मुक्तिकामी छात्रों-युवाओं का

आह्वान

द्वैमासिक
सितम्बर-अक्टूबर 2023
● 30 रुपये

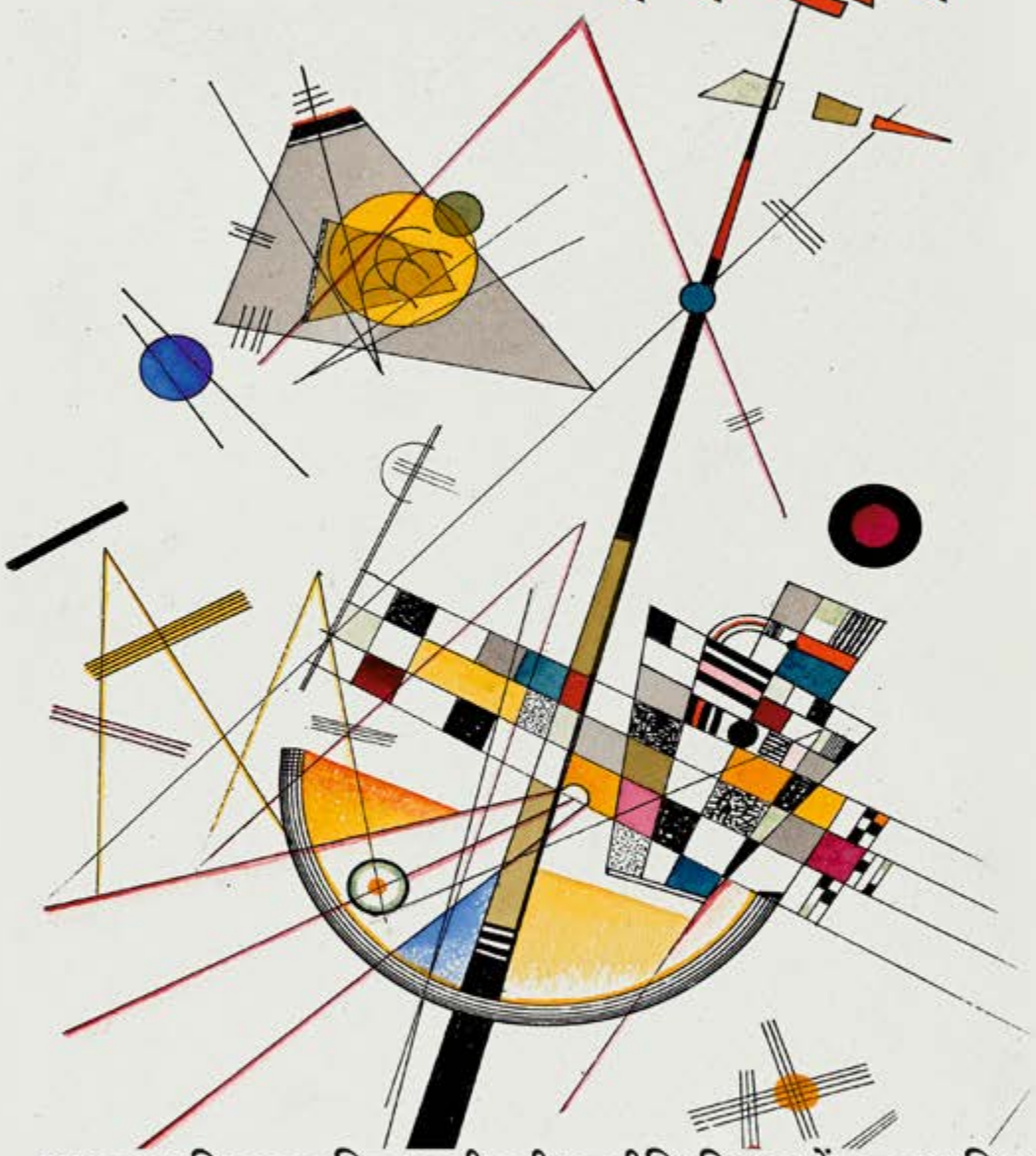

- भाजपा की साम्प्रदायिक फ़ासीवादी राजनीति की आग में जलता मणिपुर
- सेपियंस: युवल नोआ हरारी के प्रतिक्रियावादी बौद्धिक कचरे और सड़कछाप लुगदी को मिली विश्वख्याति
- उत्तराखण्ड: हिन्दुत्व की नयी प्रयोगशाला
- नूँह में साम्प्रदायिक दंगों पर रिपोर्ट
- भगतसिंह जनअधिकार यात्रा का पहला राष्ट्रीय सम्मेलन सम्पन्न

मुक्तिबोध के स्मृति दिवस (11 सितम्बर) के अवसर पर

इतने में
समन्दर में कहीं डूबी हुई जो पुण्य गंगा वह
अचानक कूच करती सागरी तल से
उभर ऊपर
भयानक स्याह बादल-पांत बनकर
फन उठाती है दिशाओं में।
(व मेरे कुन्द कमरे के अँधेरे में
निरन्तर गूँजती तड़-तड़ तड़ातड़ तेज टाइप हो रहे हैं शब्द)
बाहर धूल में भी शब्द गड़ते हैं
कि मुद्रित कर रहा है आसमानी हाथ
(तिरछी मार छींटों की!!)
घटाओं की गरज में,
बिजलियों की चमचमाहट में,
अँधेरी आत्म-संवादी हवाओं से
चपल रिमझिम
दमकते प्रश्न करती है --
मेरे मित्र,
कुहरिल गत युगों के अपरिभाषित
सिन्धु में डूबी
परस्पर, जोकि मानव-पुण्य धारा है,
उसी के क्षुब्ध काले बादलों को साथ लायी हूँ,
बशर्ते तय करो,
किस ओर हो तुम

- मुक्तिबोध

आह्वान के बारे में कुछ महत्त्वपूर्ण विचारबिन्दु

➢ **'आह्वान' विपर्यय के इस कठिन अँधेरे दौर में क्रान्ति के नये संस्करण की तैयारी के लिए युवा वर्ग का आह्वान करता है। यह एक नूतन क्रान्तिकारी नवजागरण और प्रबोधन का शंखनाद करता है। यह नयी क्रान्ति की नेतृत्वकारी शक्ति के निर्माण के लिए, उसकी मार्ग़दर्शक वैज्ञानिक जीवनदृष्टि और इतिहासबोध की समझ क़ायम करने के लिए और भारतीय क्रान्ति के रास्ते की सही समझदारी क़ायम करने के उद्देश्य से विचार-विनिमय और बहस-मुबाहसे के लिए आम जनता के विवेकशील बहादुर युवा सपूतों को आमन्त्रित करता है। 'आह्वान' क्रान्ति की आत्मा को जागृत करने की ज़रूरत का अहसास है। यह एक नयी क्रान्तिकारी स्पिरिट पैदा करने की तड़प की अभिव्यक्ति है। लोग यदि लोहे की दीवारों में क़ैद; नशे की गहरी नींद सो रहे हैं, तब भी हमें लगातार आवाज़ लगानी ही होगी। नींद में घुट रहे लोगों के कानों तक लगातार पहुँचती हमारी आवाज़ कभी न कभी उन्हें जगायेगी ही। भूलना नहीं होगा कि एक चिंगारी सारे जंगल को आग लगा सकती है। 'आह्वान' ऐसी ही एक चिंगारी बनने को संकल्पबद्ध है।**

➢ **'आह्वान' ज़िन्दगी के इस दमघोंटू माहौल को बदलने के लिए तमाम ज़िन्दा लोगों का आह्वान करता है। यह उन सभी का आह्वान करता है जो सही मायने में नौजवान हैं। जिनमें व्यक्तिगत स्वार्थ, कायरता, दुनियादारी, धन लिप्सा, कैरियरवाद और पद-ओहदे-हैसियत-मान्यता की गलाकाटू प्रतिस्पर्धा के ख़िलाफ़ लड़ने का माद्दा और ज़िद है, जिनकी रगों में उष्ण रक्त प्रवाहित हो रहा है। जो न्याय, सौन्दर्य, प्रगति और शौर्य के पुजारी हैं। 'आह्वान' जनता की सेवा में लग जाने के लिए, मेहनतकश अवाम में घुलमिलकर उसकी मुक्ति का परचम थाम लेने के लिए ऐसे ही नौजवानों का आह्वान करता है। सामाजिक क्रान्तियों की कठिन शुरुआत की चुनौतियों को स्वीकारने के लिए पहले जनता के बहादुर युवा सपूत ही आगे आते हैं। इतिहास के रथ के पहिये नौजवानों के उष्ण रक्त से लथपथ हुआ करते हैं।**

इस अंक में

अपनी ओर से

भाजपा की साम्प्रदायिक फ़ासीवादी राजनीति की आग में जलता मणिपुर 3

शिक्षा जगत

"अमृतकाल" में उच्च शिक्षा 9

पाठ्यक्रम में बदलाव : फ़ासीवादी सरकार द्वारा नयी पीढ़ी को कूपमण्डूक और प्रतिक्रियावादी बनाने की साज़िश 18

परिसरों में कम होता जनवादी स्पेस और बढ़ता प्रशासनिक दमन 36

सामयिकी

उत्तराखण्ड : हिन्दुत्व की नयी प्रयोगशाला 6

मिथक को यथार्थ बनाने के संघ के प्रयोग 21

साक्षी की हत्या को 'लव जिहाद' बनाने की संघ की कोशिश को किया गया असफल 23

अमृतकाल में बढ़ते स्त्री-विरोधी अपराध 25

बार-बार हो रही रेल दुर्घटनाओं का कारण क्या है? 27

फ़िल्मों के माध्यम से फ़ासीवादी दुष्प्रचार 29

आपस में नहीं, सबको रोज़गार की गारण्टी के लिए लड़ो! 34

विशेष सामग्री

नूँह दंगा और सरकारी दमन : एक रिपोर्ट 11

विज्ञान जगत

सेपियंस: युवल नोआ हरारी के प्रतिक्रियावादी बौद्धिक कचरे और सड़कछाप लुगदी को मिली विश्वख्याति 13

विरासत

बिरादराने वतन के नाम क़ब्र के किनारे से पैग़ाम 39

कहानी

गूँगे 32

कविताएँ

रॉके डॉल्टन की कविताएँ 38

गतिविधि रिपोर्ट 42

मुक्तिकामी छात्रों-युवाओं का आह्वान

वर्षः 16 अंकः 2

सितम्बर-अक्टूबर, 2023

सम्पादक
प्रसेन
सज्जा
रामबाबू

एक प्रति का मूल्य: **30 रुपये**
वार्षिक सदस्यता: **180 रुपये**
द्विवार्षिक सदस्यता: **360 रुपये**
पंचवर्षीय सदस्यता: **800 रुपये**
आजीवन सदस्यता: **2,500 रुपये**

सम्पादकीय कार्यालय: बी-100, मुकुन्द विहार, करावल नगर, दिल्ली, फ़ोन: 08858288593

ईमेलः ahwan.editor@gmail .com वेबसाइटः ahwanmag.com फ़ेसबुकः facebook.com/muktikamiahwan

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक **अभिनव सिन्हा** द्वारा रुचिका प्रिण्टर्स, I/10665, सुभाष पार्क, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032 से मुद्रित कराकर, बी-100, मुकुन्द विहार, करावल नगर, दिल्ली-110094 से प्रकाशित किया।

आह्वान यहाँ से प्राप्त करें

उत्तर प्रदेश : • जनचेतना, 114, जनता मार्केट, रेलवे बस स्टेशन रोड, गोरखपुर • जनचेतना, डी-68, निराला नगर, लखनऊ • जनचेतना स्टॉल, कॉफ़ी हाउस के पास, हजरतगंज, लखनऊ (शाम 5 से 8) • अमित, बीएचयू, वाराणसी, 8858288593 • प्रोग्रेसिव बुक स्टॉल, विश्वनाथ मन्दिर गेट, बीएचयू, वाराणसी • अविनाश, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, 9891951393, • ज्ञानभारती, साइंस फैकल्टी के सामने, कटरा, इलाहाबाद • शहीद भगतसिंह पुस्तकालय, सिंघलपट्टी, अम्बेडकरनगर • करण, एस14, श्री जी रेज़ीडेंसी, मथुरा - 281001, 7037189590 • सुरेश, चित्रकूट, फ़ोन:9794625522 • रमेश, गाज़ीपुर, फ़ोन: 9793567003 • भगतसिंह जनपुस्तकालय, गली नं. 5, सहादतपुरा, मऊ, फ़ोन: 7985068615

दिल्ली : • योगेश, बी-100, मुकुन्द विहार, करावल नगर • पी.पी.एच., जे.एन.यू. • गीता बुक सेण्टर, जे.एन.यू. • हेम बुक सेण्टर, जे.एन.यू. • सेण्ट्रल न्यूज एजेंसी, कनॉट प्लेस • पी.पी. एच. बुकशॉप कनॉट प्लेस • लता, जे.एन.यू., फ़ोन: 8800105101, • केशव, फ़ोन: 9852838689, • प्रियम्वदा, फ़ोन: 9693469694

बिहार : • शहीद भगतसिंह पुस्तकालय, गोसाईं टोला, पाटलिपुत्र कॉलोनी, पटना-800013 • राहुल सांकृत्यायन पुस्तकाल, बी. एम. दास रोड, अशोक राजपथ, पटना, बिहार, 800004 • पी. पी.एच., जनशक्ति भवन, वीरचन्द पटेल रोड क्षेत्र, पटना, बिहार, 800001 • श्री रामनारायण राय (शिक्षक), प्रोफ़ेसर कॉलोनी, सी.एन. कॉलेज साहेबगंज, पो- करनौल, ज़िला मुजफ्फरपुर • डॉ. गिरिजाशंकर मोदी, शब्दसदन, सिकन्दरपुर, मिरजानहाट, भागलपुर • प्रगतिशील साहित्य सदन, पटना कालेज गेट के सामने, अशोक राजपथ, पटना • श्री चन्द्रेश्वर, एल.एच. 3/8, हाउसिंग कॉलोनी, चन्दवा, आरा, ज़िला-भोजपुर • सन्तोष ओझा द्वारा रघुनाथ ओझा, शिवचन्द्र पथ, काली मन्दिर रोड, हनुमान नगर, कंकड़ बाग़, पटना • रामप्रवेश कुमार, ग्राम व पोस्ट-रूस्तमपुर (बेलदारी पर) थाना, हुलासगंज, वाया इस्लामपुर, नालन्दा

राजस्थान : • चन्द्रशेखर, लोकायत प्रकाशन, 883, लोधो की गली, एम.डी. रोड, जयपुर

हरियाणा : • रमेश खटकड़, हरि नगर, गली नंबर 3, नरवाना, ज़िला-जीन्द • हैप्पी बुक डिपो, स्टूडेण्ट एक्टिविटी सेण्टर, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यायल, रोहतक • अजय आशु, जीन्द, फ़ोन: 8685030984 • इन्द्रजीत, रोहतक, फ़ोन: 8010156365 • शाम मूर्ति, गुड़गाँव, फ़ोन: 8397861640

पंजाब : • अवतार सिंह, बठिण्डा, फ़ोन: 9501070001 • इनज़िन्दर सिंह, संगरूर, फ़ोन: 9888080820 • दीपक शर्मा, मकान नं. 30, गुरुद्वारा खुही-सर, गली नं. 3, सतजोत नगर, ढांढरा रोड, लुधियाना-141116 • प्रभदीप, लुधियाना, फ़ोन: 9888808876

चण्डीगढ़ : • शुभम रौतेला, पंजाब यूनिवर्सिटी, चण्डीगढ़, फ़ोन: 8196803093

हिमाचल प्रदेश : • वृषाली, एचपीयू, शिमला, फ़ोन: 9582712837 • सुरेश सेन निशान्त, गाँव सलाह, डाक-सुन्दरनगर-1, ज़िला-मण्डी

महाराष्ट्र : • पीपुल्स बुक हाउस, मेहरजी हाउस, 15, कावसजी पटेल स्ट्रीट फ़ोर्ट, मुम्बई • खन्ना जी, विश्वभारती प्रकाशन, धनवते चैम्बर्स, सीतावर्दी, नागपुर • शहीद भगतसिंह पुस्तकालय, कमरा नं. 209, हीरानन्दानी बिल्डिंग, बिल्डिंग नं. 7बी, लल्लूभाई कम्पाउण्ड, मानखुर्द, मुम्बई (पश्चिम), 400043, फो. 08826265960 • गोपाल नायडू, कौशल्या अपार्टमेण्ट चूना भट्टी, अजनी रोड, नागपुर • शहीद भगतसिंह पुस्तकालय, पंचशील विद्यामन्दिर, शाळेसमोर, बौद्धवस्ती, सिद्धार्थनगर, अहमदनगर, महाराष्ट्र • अभिजीत, 6, गुलमोहर, समर्थ सोसाइटी, वारजे, पुणे -58

मध्यप्रदेश : • संजय बुक स्टॉल, शाप नं- 43, ग्वालियर

उत्तराखण्ड : • अपूर्व, (देहरादून), फ़ोन: 7042740669 • वर्मा एजेंसी, हनुमान चौक सोमेश्वर, अल्मोड़ा • राजेन्द्र जोशी द्वारा श्रमजीवी पत्रकार संगठन द्वितीय तल, ज़िला पंचायत भवन, पिथौरागढ़ • दख़ल, द्वारा श्री रमाशंकर नेलवाल नज़दीक उत्तर उजाला ऑफ़िस, चौहान पाटा, मालरोड, अल्मोड़ा • बुक वर्ल्ड, 10- ए, एस्ले हाल, देहरादून

जम्मू : • श्री पुरुषोत्तम, लेक्चरर, हिन्दी विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय

छत्तीसगढ़ : • शेख अंसार, रायपुर व राजनांदगाँव, फ़ोन: 9993233537 • जैनेन्द्र ठाकुर, रायपुर, फ़ोन: 9009755117 • श्री देवांशु पाल, सं. 'पाठ', गायत्री विहार, गली विनोबा नगर, बिलासपुर

केरल : • राजीव साची, फ्लैट नं. डी4, गैलेक्सी लक्ज़र, सेंट सेबस्टियन रोड, पोन्नूरन्नी, वायटिला, कोच्चि-19

आन्ध्र प्रदेश : • आन्ध्रा बुक हाउस, शाप नं- 19, पुलिस बैरक्स सूर्याबाग, विशाखापत्तनम-20, फ़ोन नं : 9810093581 • अनेका बुक स्टाल, डी/एन 30-5-26/1, कोका चलपतिराव स्टेशन, एलुरु रोड, विजयवाड़ा-2, फ़ोन : 8186903601

तेलंगाना : • आनन्द सिंह, 1-11-110/92/ए/44 श्यामलाल बिल्डिंग, बेगमपेट, हैदराबाद, तेलंगाना 500016, फ़ोन : 9971196111

भाजपा की साम्प्रदायिक फ़ासीवादी राजनीति की आग में जलता मणिपुर

पिछले कई महीनों से मणिपुर जनजातीय ख़ूनी संघर्ष की आग में जल रहा है। अभी तक इस हिंसा में सैकड़ों लोग मारे जा चुके हैं। हज़ारों लोग घायल हैं। बड़ी संख्या में लोगों के घर, उनके पूजा/प्रार्थना स्थल नष्ट हुए हैं और हज़ारों लोग बेघर हो चुके हैं। पुलिस की मौजूदगी में दो लड़कियों के साथ हुई बर्बरता की घटना के ख़ुलासे के बाद देश का हर संवेदनशील इंसान सदमे में था। लेकिन 'बेटी बचाओ' का ढोंग रचने वाली भाजपा सरकार पर इसका कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा। मोदी को इस घटना के बाद चौतरफ़ा दबाव की मज़बूरी में अपना मुँह खोलना पड़ा। मणिपुर की भाजपा सरकार द्वारा इण्टरनेट बन्द करने के कारण वहाँ इस दौरान अनिवार्य तौर पर हुई होंगी अन्य बर्बर घटनाएँ लोगों के सामने नहीं आ सकीं। दो लड़कियों के साथ बर्बरता की घटना की जानकारी भी लोगों को घटना के काफ़ी समय बाद एक वीडियो के वायरल होने से हो सकी। इससे मणिपुर की भयावह स्थिति का अन्दाज़ा लगाया जा सकता है।

अतीत के नृजातीय संघर्ष और सरकारी भोंपू की नज़र से देखने पर मणिपुर की वर्तमान स्थिति के लिए वहाँ की कुकी जनजाति और मैतेई समुदाय का आपसी संघर्ष मुख्य कारण मालूम पड़ता है। लेकिन तथ्यों की रोशनी में गहराई से देखने पर पता चलता है कि सच्चाई कुछ और ही है। आगे हम मणिपुर के भारतीय राज्य से सम्बन्ध, मणिपुर के नृजातीय संघर्ष के इतिहास, भाजपा के सत्ता में आने के बाद मणिपुर में साम्प्रदायिक राजनीति के उभार और भाजपा सरकार के "हिंसा" रोकने के लिए उठाए गये क़दमों के आधार पर वस्तुस्थिति की तस्वीर पेश करेंगे।

आज़ादी पूर्व औपनिवेशिक सत्ता और आज़ादी के बाद भारतीय राज्य की भूमिका

इतिहास के पन्नों में थोड़ा पीछे जाकर देखें तो हम पाते हैं कि उत्तर-पूर्व का पूरा क्षेत्र आज़ादी से पहले किसी भी भारतीय साम्राज्य का हिस्सा नहीं था। औपनिवेशिक काल में अंग्रेज़ इस क्षेत्र के भूराजनीतिक-सामरिक महत्व और अपने आर्थिक हितों के मद्देनज़र इसे भारत और चीन के बीच एक 'बफ़र रीजन' बनाना चाहते थे। मैदानी क्षेत्रों की जनता के विद्रोहों से इस क्षेत्र को अलग-थलग करने के लिए अंग्रेज़ों ने बड़ी ही चालाकी से उत्तर-पूर्व की आबादी की शेष भारत की आबादी से पारस्परिक अन्तरक्रिया नहीं होने दी। इसकी वजह से भूराजनीतिक दृष्टि से शेष भारत से जुड़ने के बावजूद इस क्षेत्र की जनता का सांस्कृतिक अलगाव बना रहा। औपनिवेशिक शासन के अन्तिम दौर में और आज़ादी के बाद राजनीतिक दमन, आर्थिक शोषण, सांस्कृतिक अलगाव से उत्तर-पूर्व की विभिन्न जनजातियों में भारतीय राज्य के ख़िलाफ़ प्रतिरोध की चेतना एक ख़ास क़िस्म के नृजातीय राष्ट्रवाद के रूप में पनपी। नगा जैसी कुछ जनजातियाँ अपने कई उपसमूहों को मिलाकर एक राष्ट्र के रूप में विकसित हुईं तो कुछ राष्ट्रीयताओं और उपराष्ट्रीयताओं के रूप में। इन राष्ट्रों-राष्ट्रीयताओं के प्रतिरोध का साझा बिन्दु दिल्ली की केन्द्रीय सत्ता का विरोध था। परन्तु इनमें आपसी अन्तरविरोधों का भी एक लम्बा इतिहास रहा है। मसलन नगा-कुकी विवाद, नगा-मेइती विवाद, नगा-जोमी विवाद, असमी-बोडो विवाद आदि।

भारतीय संघात्मक ढाँचा वास्तव में यदि आत्मनिर्णय के अधिकार को मान्यता देने के बाद अस्तित्व में आता तो भारतीय संघ के भीतर उत्तर-पूर्व अपने आपमें कई नृजातीय राष्ट्रों-राष्ट्रीयताओं का संघ होता और इन राष्ट्रों-राष्ट्रीयताओं के भीतर भी कई उपराष्ट्रीयताओं और भाषिक समुदायों के अपने स्वायत्तशासी क्षेत्र होते। लेकिन इसकी जगह अतिकेन्द्रीयकृत भारतीय

संघात्मक ढाँचा ऊपर से थोप दिया गया। इस वजह से उत्तर-पूर्व की जनता दिल्ली की सत्ता को औपनिवेशिक काल की निरन्तरता में ही देखती रही।

उत्तर-पूर्व के विभिन्न राज्यों के इतिहास पर निगाह डालने से भारतीय राज्यसत्ता का ऐतिहासिक विश्वासघात स्पष्ट रूप से सामने आता है। मणिपुर में औपनिवेशिक काल में ही हिजाम इराबोट के नेतृत्व में सामन्तवाद और उपनिवेशवाद के ख़िलाफ़ एक शक्तिशाली जनवादी आन्दोलन उभरा। जिसकी वजह से अंग्रेज़ों के जाने के बाद 'मणिपुर संविधान क़ानून 1947' पास हुआ और मणिपुर राज्य आधुनिक ढंग-ढर्रे पर एक संवैधानिक राजतन्त्र के रूप में सामने आया। नये संविधान के तहत मणिपुर में चुनाव भी हुए और विधानसभा भी गठित हुई। परन्तु 1947 में ही भारत सरकार के प्रतिनिधि वी.पी. मेनन ने राज्य में गिरती क़ानून-व्यवस्था पर विचार-विमर्श के लिए राजा को शिलांग बुलाया और वहाँ कुटिलता से उससे भारत में विलय के समझौते पर हस्ताक्षर करा लिया। भारत सरकार ने इस समझौते की अभिपुष्टि नवनिर्वाचित मणिपुर विधानसभा द्वारा नहीं कराया। उल्टे विधानसभा को भंग कर मणिपुर को चीफ़ कमिश्नर के मातहत कर दिया गया। यहाँ से भारतीय राज्य द्वारा प्रलोभन और दमन की नीति अपनाकर प्रतिरोध को दबाने का सिलसिला शुरू हुआ और इसी के समान्तर सशस्त्र संघर्षों का भी सिलसिला शुरू हो गया। 'आर्म्ड फोर्सेज़ स्पेशल पावर्स एक्ट' की आड़ में भारतीय सेना द्वारा की गयी बर्बरता ने इस प्रतिरोध को और तेज़ कर दिया। 2004 में भारतीय सैनिकों द्वारा एक मणिपुरी महिला मनोरमा के बलात्कार और हत्या के विरोध में वहाँ की महिलाओं ने निर्वस्त्र होकर सेना मुख्यालय के सामने विरोध प्रदर्शन किया। भारतीय राज्यसत्ता ने अपने ख़िलाफ़ खड़े हो रहे प्रतिरोध को तोड़ने के लिए विभिन्न नृजातीय अस्मिताओं पर आधारित सैन्य गुटों के निर्माण को बढ़ावा दिया। इन नृजातीय अस्मिताओं का नेतृत्व कर रहे नेताओं को विकास के नाम पर दिये जा रहे फ़ण्ड में हिस्सेदारी सुनिश्चित कर उन्हें भ्रष्ट करने का काम भी किया।

मणिपुर में नृजातीय संघर्ष के कुछ वस्तुगत कारक

घाटी और पहाड़ी इलाक़ों में रहने वाले अलग-अलग समुदायों के बीच ज़मीन और प्राकृतिक संसाधनों को लेकर, राष्ट्र को लेकर अस्मितावादी तनावों, टकराहटों व हिंसा का पुराना इतिहास रहा है। मणिपुर भौगोलिक रूप से मोटे तौर पर दो भागों – पहाड़ी भाग और इम्फ़ाल घाटी – में बाँटा जा सकता है। पहाड़ी भाग में कुकी और नगा जैसी जनजातियों की बहुतायत है जबकि इम्फ़ाल घाटी में मैतेई नृजाति के लोग रहते हैं। मणिपुर के कुल क्षेत्रफल का मात्र 11 प्रतिशत होने के बावजूद इम्फ़ाल घाटी में मणिपुर की जनसंख्या का बहुलांश निवास करता है जिनमें बड़ा हिस्सा मैतेई लोगों का है। जो आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक दृष्टि से मणिपुर की सबसे प्रभुत्वशाली नृजातीय समुदाय है। मैतेई लोगों की आबादी मणिपुर की कुल जनसंख्या का 53 प्रतिशत है जबकि ज़्यादातर पहाड़ी इलाक़ों में निवास करने वाले नगा और कुकी जनजातियों की आबादी मणिपुर की कुल आबादी का क़रीब 40 प्रतिशत है। पूँजीवादी असमान विकास की स्थिति में वर्तमान समय में मैतेई समुदाय राजनीतिक व आर्थिक दृष्टि से सबसे प्रभुत्वशाली नृजातीय समुदाय है। मैतेई समुदाय की आर्थिक महत्वाकांक्षा उसे जंगल तथा पहाड़ी इलाक़ों की तरफ़ ले जाती है। लेकिन यह इसलिए सम्भव नहीं है क्योंकि मैतेई समुदाय ओबीसी दर्जे के चलते इन इलाक़ों में ज़मीन नहीं ख़रीद सकती। इस मामले में यह इलाक़ा यहाँ रहने वाली एसटी दर्ज़ा प्राप्त कुकी और नगा आबादी के लिए आरक्षित है। इस वजह से मैतेई समुदाय काफ़ी समय से ख़ुद को जनजाति का दर्ज़ा देने की माँग उठा रहा है, ताकि यह बाधा ख़त्म हो सके। जबकि कुकी जनजाति का मानना है कि मैतेई समुदाय राज्य में एक सशक्त समुदाय है और मणिपुर की 60 में से 40 विधायी सीटों पर उनका क़ब्ज़ा है। उनका आगे तर्क है कि मैतेई भाषा संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल है और वे आदिवासियों की तुलना में शैक्षिक, सामाजिक और आर्थिक रूप से बेहतर हैं। इसलिए, यदि मेइती लोगों को एसटी का दर्ज़ा दिया जाता है, तो वे न केवल संविधान द्वारा जनजातियों को दी जाने वाली सभी सरकारी नौकरियों और अन्य लाभों पर क़ब्ज़ा कर लेंगे, बल्कि आदिवासियों की ज़मीन भी हड़प लेंगे। इसी तरह नगा जनजाति के साथ कुकी जनजाति के झगड़े नगाओं के नेशनल सोशलिस्ट काउंसिल ऑफ नगालिम (एनएससीएन) की 1980 के दशक में कुकियों द्वारा बसाए गये क्षेत्र को ग्रेटर नगालिम में शामिल करने की माँग से उपजी थी। हालाँकि, 1990 के दशक में नगाओं के साथ संघर्ष के बाद एक अलग राज्य की माँग प्रमुख हो गयी। 1992 और 1997 के बीच, नगा उग्रवादी समूहों द्वारा कुकी लोगों का जातीय सफ़ाया किया गया, जिसके बाद राज्य में अलग/स्वतन्त्र कुकीलैण्ड की माँग करने वाले कई कुकी सशस्त्र समूह सामने आये।

फ़िलहाल, कुकी जनजाति और मैतेई समुदाय के बीच हिंसा के शुरू होने का तात्कालिक कारण अप्रैल माह में मणिपुर उच्च न्यायालय द्वारा दिया गया एक फ़ैसला था, जिसमें राज्य सरकार को एक महीने में मैतेई समुदाय को अनुसूचित जनजाति का दर्ज़ा देने के लिए केन्द्र सरकार को सुझाव भेजने का आदेश दिया गया था। उसके बाद 'ऑल ट्राइबल स्टूडेण्ट्स यूनियन ऑफ़ मणिपुर' ने राजधानी इम्फ़ाल में एक जनजाति समर्थन मार्च निकाला था, जिसके बाद से प्रदेश में हिंसा भड़क उठी।

मणिपुर में वर्तमान हिंसा में फ़ासीवादी भाजपा की साम्प्रदायिक राजनीति की भूमिका

उपरोक्त कारकों के अलावा मणिपुर की हालिया हिंसा में एक नया और बड़ा कारण मणिपुर में संघ परिवार व भाजपा की

मौजूदगी और उसका फ़ासीवादी प्रयोग रहा है। ग़ौरतलब है कि मणिपुर में 2017 से ही भाजपा की सरकार है जिसका इस समय दूसरा कार्यकाल चल रहा है। पिछले छह वर्षों में संघ परिवार ने सचेतन रूप से मणिपुर में मैतेयी राष्ट्रवाद को बढ़ावा देने और उसे हिन्दुत्ववादी भारतीय राष्ट्रवाद से जोड़ने के तमाम प्रयास किये हैं। हाल के वर्षों में ऐसी अनेक संस्थाएँ अस्तित्व में आयी हैं जो मैतेयी लोगों के हितों की नुमाइन्दगी करने के नाम पर खुले रूप में मणिपुर की अन्य जनजातियों, जैसे कुकी और नगा के प्रति घृणा का माहौल पैदा कर रही हैं। ऐसे ही मैतेयी राष्ट्रवादी संगठन मैतेयी लोगों को अनुसूचित जनजाति का दर्ज़ा दिलाने की माँग ज़ोर-शोर से उठा रहे हैं। ये संगठन मैतेयी लोगों को यह लालच दे रहे हैं कि अनुसूचित जनजाति का दर्ज़ा मिलने के बाद वे पहाड़ी इलाक़ों में ज़मीन ख़रीद सकेंगे जो वे फ़िलहाल नहीं कर सकते। वे मैतेयी लोगों में इस डर को फैला रहे हैं कि आप्रवासन की वजह से पहाड़ों में रहने वाली जनजातियों, ख़ासकर कुकी लोगों की आबादी में लगातार बढ़ोत्तरी हो रही है और जल्द ही मैतेयी लोग अल्पसंख्यक बन जायेंगे। मणिपुर के मुख्यमन्त्री एन. बीरेन सिंह भी मैतेयी समुदाय से आते हैं और हाल की हिंसा में उन्होंने खुलकर मैतेयी लोगों का पक्ष लेते हुए कुकी लोगों के ख़िलाफ़ ज़हर उगला है और इस हिंसा के लिए मुख्य रूप से कुकी मिलिटेंसी को ज़िम्मेदार ठहराया। बीरेन सिंह की सरकार ने प्रशासन व पुलिस के शीर्ष पदों पर भी मैतेयी लोगों की नियुक्ति करके पहाड़ी इलाक़ों में बसने वाली जनजातियों की प्रशासन में भागीदारी भी लगातार कम की है और इस वजह से मौजूदा हिंसा के दौरान भी समूचे प्रशासन का रवैया कुकी लोगों के प्रति दुर्भावना व भेदभाव वाला रहा है।

ग़ौरतलब है कि मैतेयी लोगों की अधिकांश आबादी हिन्दू धर्म को मानने वाली है जबकि पहाड़ी इलाक़ों में रहने वाले कुकी और नगा जनजातियों की अधिकांश आबादी ईसाई धर्म को मानने वाली है। मैतेयी और कुकी विवाद को धार्मिक व साम्प्रदायिक रंग में रंगने का ही नतीजा यह रहा कि मौजूदा हिंसा में कुकी लोगों के घरों सहित उनके चर्चों पर हमले किये गये। जवाब में कुकी समूहों ने भी मैतेयी लोगों के मन्दिरों पर हमले किये। संघ परिवार ने अपने साम्प्रदायिक फ़ासीवादी एजेण्डे के तहत देशभर में इस पूरे प्रकरण को ईसाई बनाम हिन्दू के रूप में प्रचारित किया।

इस पूरे प्रकरण में एक कारक और आकर जुड़ जाता है, वह है मणिपुर की सीमा से लगे म्यांमार से कई जनजातियों का भारत में प्रवास! म्यांमार में पिछले दो वर्षों के दौरान वहाँ के सैन्य शासकों द्वारा दमन की वजह से कई जनजातियों के लोग भारत की ओर पलायन करने को मजबूर हैं। ऐसे तमाम आप्रवासी मिज़ोरम व मणिपुर में शरण ले रहे हैं। कुकी जनजाति के लोगों को म्यांमार में चिन कहा जाता है। एक ही जनजाति होने के नाते कुकी लोगों ने हाल के वर्षों में चिन लोगों को पनाह दी है। क़ायदे से भारत सरकार व मणिपुर की राज्य सरकार को मानवीय आधार पर शरणार्थियों को शरण देने के औपचारिक इन्तज़ामात करने चाहिए थे, परन्तु इसकी बजाय मैतेयी राष्ट्रवादी संगठन इम्फ़ाल में मैतेयी लोगों के बीच यह अफ़वाह उड़ा रहे हैं कि कुकी लोगों की बढ़ती आबादी की वजह से मैतेयी लोग मणिपुर में अल्पसंख्यक बन जायेंगे और चूँकि कुकी लोग इम्फ़ाल में ज़मीन ख़रीद सकते हैं इसलिए इम्फ़ाल में उनका प्रभुत्व हो जायेगा। सबसे ख़तरनाक बात यह है कि मणिपुर की सरकार इन मैतेयी संगठनों के सुर से सुर मिला रही है। हाल ही में मणिपुर के मुख्यमन्त्री एन. बीरेन सिंह ने मणिपुर में भी असम की तर्ज़ पर नेशनल रजिस्टर ऑफ़ सिटिज़न्स (एनआरसी) तैयार करने की बात की है ताकि चिन आप्रवासियों को अवैध करार देकर उन्हें मणिपुर से बाहर निकाला जा सके।

मैतेयी अस्मितावादी राजनीति की प्रतिक्रिया में कुकी लोगों के बीच से भी कुकी पहचान पर ज़ोर देने वाली कुकी अस्मितावादी राजनीति भी ज़ोर पकड़ रही है। कुकी नेशनल ऑर्गनाइज़ेशन जैसे कुकी अस्मितावादी संगठन मणिपुर से अलग होकर भारतीय यूनियन के भीतर कुकी लोगों का अपना राज्य कुकीलैण्ड बनाने की माँग कर रहे हैं। हाल ही में मणिपुर के कुछ कुकी विधायकों ने इस बाबत केन्द्र सरकार से अपील भी की है।

इस प्रतिस्पर्धी अस्मितावादी राजनीति ने मणिपुर के हालात बिगाड़ने में अहम भूमिका अदा की है क्योंकि इसकी वजह से मणिपुर हिंसा और प्रतिहिंसा के दुष्चक्र से बाहर नहीं निकल पा रहा है। परन्तु हालात को इस नाज़ुक मुक़ाम पर पहुँचाने के लिए सर्वोपरि तौर पर भारतीय राज्यसत्ता ज़िम्मेदार है क्योंकि उसने वर्षों से अपने ख़िलाफ़ हो रहे प्रतिरोध को तोड़ने के लिए नृजातीय अस्मितावादी संगठनों और साम्प्रदायिक राजनीति को बढ़ावा दिया है। पूर्वोत्तर के राज्यों में बढ़ती नृजातीय हिंसा का फ़ायदा उठाकर भारतीय राज्यसत्ता को समूचे क्षेत्र में अपनी सैन्य उपस्थिति को बढ़ाने व उसे जायज़ ठहराने तथा ऑर्म्ड फ़ोर्सेज़ स्पेशल पावर्स एक्ट जैसे कुख्यात क़ानून का लागू करने में भी मदद मिलती है। इसमें ताज्जुब की बात नहीं है कि भारतीय राज्यसत्ता पर हिन्दुत्ववादी फ़ासिस्टों के क़ाबिज़ होने के बाद अस्मिताओं के टकराव और भी ज़्यादा हिंसक रूप में सामने आ रहे हैं। मणिपुर व पूर्वोत्तर के अन्य राज्यों के लोगों को भारतीय राज्यसत्ता की 'फूट डालो व राज करो' की इस राजनीति को समझना होगा और नृजातीय संघर्षों में उलझने के बजाय अपनी शक्ति अपने साझा उत्पीड़क व दमनकर्ता यानी भारतीय राज्यसत्ता के ख़िलाफ़ संघर्ष में लगानी होगी। तभी वे अपने राष्ट्रीय मुक्ति के संघर्ष को भी मुक़ाम तक ले जा सकेंगे।

•

सामयिकी

उत्तराखण्ड: हिन्दुत्व की नयी प्रयोगशाला

अपूर्व मालवीय

एक झूठ को अगर सौ बार बोलो तो उसे सच समझा जाता है- गोएबल्स

हिटलर के प्रचार मन्त्री गोएबल्स की इस उक्ति को भारत के फ़ासिस्ट अच्छी तरीक़े से लागू करने की कला में माहिर हो चुके हैं! 1925 से ही आरएसएस की शाखाओं और प्रचार अभियानों में मुसलमानों, ईसाइयों और कम्युनिस्टों के ख़िलाफ़ झूठ, मनगढ़न्त तथ्यों और मिथ्या प्रचारों का जो प्रोपेगेण्डा चलाया गया है उसे आज हिन्दू आबादी का बड़ा हिस्सा सत्य समझने लगा है। इनके प्रचार अभियानों में अन्धराष्ट्रवाद, हिन्दूगर्व का मिथ्याभिमान, मुसलमानों, इसाईयों और कम्युनिस्टों को "हिन्दू धर्म व देश के लिए ख़तरा" जैसे मिथ्या विचारों को बहुत ही कुशलता के साथ प्रचारित किया जाता है। उनके इस प्रचार अभियान से निम्न मध्यवर्ग और मज़दूर वर्ग की वह आबादी ज़्यादा प्रभावित होती है, जो भविष्य की अनिश्चितताओं, धार्मिक पोंगापन्थ, पाखण्ड और अन्धविश्वास में डूबी व अतार्किक होती है। ये वो आबादी है जो ज़िन्दगी की वास्तविक समस्याओं, मसलन रोज़ी-रोटी, आर्थिक तंगी, ग़रीबी-बदहाली जैसी समस्याओं को पूँजीवादी व्यवस्था की समस्या न मानकर किसी छद्म दुश्मन या कारक को इसका मुख्य कारण मानने लगती है। इसी आबादी के बीच संघ का दुष्प्रचार रूपी पौधा फलता-फूलता है और बरगद का आकार लेता जाता है। इसके अतार्किक, अन्धविश्वासी और मिथ्याभिमान की बंजर भूमि पर हिन्दुत्व की खेती की जाती है और सही समय आने पर उसकी फ़सल काटी जाती है।

आजकल इस फसल की बुवाई, रोपाई, सिंचाई का प्रयोग उत्तराखण्ड में ज़ोर-शोर से चल रहा है। मुसलमानों को निशाना बनाकर यहाँ तथाकथित "लव जिहाद", "लैण्ड जिहाद", "व्यापार जिहाद" के साथ ही "जनसंख्या जिहाद" का मामला ख़ूब उछाला जा रहा है। संघियों के इस झूठे प्रचारों को हवा देने में गोदी मीडिया से लेकर सोशल मीडिया तक के प्लेटफार्म लगे हुए हैं। यहाँ पुष्कर सिंह धामी की भाजपा सरकार मुसलमानों के ख़िलाफ़ लगातार कोई न कोई अभियान छेड़े हुए है। कभी मुस्लिम बस्तियों को निशाना बनाकर उसे अवैध ठहराने की कोशिश की जाती है, कभी "पहचान सत्यापन" और "सन्दिग्ध व्यक्तियों" की तलाश में मुस्लिम बस्तियों और गाँवों में छापे मारे जाते हैं! इसके साथ ही आरएसएस का मुखपत्र 'पाञ्जन्य' रोज़ कहीं न कहीं से "लैण्ड जिहाद", "लव जिहाद" और उत्तराखण्ड में "मुसलमानों की आबादी में बेतहाशा बढ़ोत्तरी" की ख़बरें लाता रहता है। इन झूठे प्रचार अभियानों की निरन्तरता और तेज़ी इस कारण से भी ज़्यादा बढ़ी है क्योंकि राज्य का मुख्यमन्त्री तक "लव जिहाद" और "लैण्ड जिहाद" पर लगातार भाषणबाजी करता रहता है। ऐसा लगता है कि जबसे यह संविधान और धर्मनिरपेक्षता की शपथ खाकर कुर्सी पर बैठा है, तबसे इसने संघी कुत्सा प्रचारों को प्रमाणित और उन्हें सिद्ध करने का ठेका ले लिया है!

क्या हैं ये कुत्सा प्रचार और क्या है उसकी हक़ीक़त?

सबसे पहले संघियों के इस झूठे कुत्सा प्रचार के पिटारे को एक साथ खोलकर रख देते हैं, उसके बाद विस्तार से इस पर बात करते हैं। इस पिटारे में "जिहाद" जैसे शब्दों का भण्डार है। जिसमें हिन्दू आबादी के बीच मुस्लिम आबादी के अप्रत्याशित रूप से बढ़ने ("जनसंख्या जिहाद"), हिन्दुओं के धार्मिक स्थलों के अपवित्र होने, हिन्दुओं के रोज़गार और जगह-ज़मीन ("व्यापार जिहाद" और "भूमि जिहाद") छिन जाने के "भय" को बढ़ावा देना है। इस "भय" को बरक़रार रखने के लिए क्या-क्या तथ्य गढ़े जा रहे हैं, इसकी बानगी देखिये -

"पछुवा दून सहित हिन्दुओं की धर्मनगरी हरिद्वार के चारों ओर मुस्लिम आबादी बढ़ रही है!"

"उत्तराखण्ड के चार जिलों देहरादून, हरिद्वार, उधमसिंह नगर और नैनीताल में मुस्लिम आबादी एक प्रतिशत से बढ़कर अठारह प्रतिशत तक हो गयी है।"

"उत्तराखण्ड के वन क्षेत्रों और गंगा जैसी पवित्र नदी के किनारों पर मुस्लिम क़ब्ज़ा करके अपनी बस्तियाँ बना रहे हैं। वहाँ मस्जिदें, मज़ार और मदरसे बना रहे हैं।"

"चारधाम यात्रा के मुख्यमार्गों पर मुस्लिम दुकानदारों की संख्या बढ़ रही है।"

"पहाड़ों से हिन्दू आबादी पलायन करके जा रही है। वहाँ मुस्लिम उनके मकानों और खेतों को सस्ते दामों में ख़रीद रहे हैं।"

यानी, "भूमि जिहाद", "व्यापार जिहाद" और "जनसंख्या जिहाद" का "आतंक" पूरे उत्तराखण्ड में छाया हुआ है! इसके साथ ही संघियों का चिर परिचित "लव जिहाद" तो चलता ही रहता है! इन सब झूठे तथ्यों और अफ़वाहों से अलग वास्तविकता कुछ और ही है। सबसे पहले इनके "जनसंख्या जिहाद" पर बात करते हैं-

वास्तविकता यह है कि पछुवा दून सहित हरिद्वार के दक्षिण-पश्चिम क्षेत्र से लगे दर्जनों गाँवों में मुस्लिम आबादी कई पीढ़ियों से रहती चली आ रही है। वहाँ रहने वाली आबादी के बीच जब प्रत्यक्षतः जाँच-पड़ताल की गयी तो पता चला कि इन इलाक़ों में मुस्लिम आबादी की संख्या में न तो कोई अप्रत्याशित बढ़ोत्तरी हुई है और न ही कमी! हाँ यह ज़रूर है कि कोरोना महामारी के बाद बहुत से परिवारों का रोजी-रोज़गार कमाने का ज़रिया बदला है। यह हिन्दुओं में भी हुआ है। जिनकी दुकान थी वो उजड़ कर कोई छोटा-मोटा धन्धा करने, ठेला-खोमचा लगाने या दूसरे तरह के मेहनत-मज़दूरी के काम में लग गये! दूसरे, पूँजीवादी व्यवस्था की अनिश्चतताओं ने पूरे देश में ही ग़रीब मेहनतकशों की आबादी को एक जगह से उजाड़ कर दूसरी जगह जाने के लिए मजबूर किया है। इन्हीं अनिश्चिताओं ने ग़रीब मुस्लिम मेहनतकशों को भी अपनी रोज़ी-रोटी की तलाश में इधर-उधर भटकाया है।

जहाँ तक उत्तराखण्ड के चार जिलों में मुस्लिम आबादी के एक प्रतिशत से बढ़कर अठारह प्रतिशत होने की बात है तो ये भी एक कुत्सा प्रचार ही है। 2011 की जनगणना के अनुसार उत्तराखण्ड राज्य में 82.97 प्रतिशत हिन्दू और 13.95 प्रतिशत मुस्लिम हैं। जहाँ तक चार जिलों में हिन्दू-मुस्लिम की जनसंख्या का मामला है तो 2001 से लेकर 2011 तक की जनगणना के आँकड़े नीचे दिये जा रहे हैं। उन पर एक नज़र मारते ही संघियों के इस झूठ का पर्दाफाश हो जाता है कि मुसलमानों की आबादी में बेतहाशा बढ़ोत्तरी हुई है।

जनगणना 2001:- हिन्दू - मुस्लिम
देहरादून- 1086094 - 139197
नैनीताल- 655290 - 86532
हरिद्वार- 944927 - 478274
ऊधम सिंह नगर- 832811 - 254457

जनगणना 2011:- हिन्दू - मुस्लिम
देहरादून- 1424916 - 202057
नैनीताल- 809717 - 120742
हरिद्वार- 1214935 - 648119
ऊधम सिंह नगर- 1104452 - 372267

2021 की जनगणना अभी प्रकिया में है। लेकिन इन आँकड़ों से ये साफ़ हो जाता है कि मुस्लिम आबादी की संख्या में कहीं भी कोई अप्रत्याशित बढ़ोत्तरी नहीं है।

संघियों के दूसरे कुत्सा प्रचार "भूमि जिहाद या लैण्ड जिहाद" की हक़ीक़त

हिन्दुत्ववादी दक्षिणपन्थी संगठनों और कुछ धर्म के ठेकेदारों के अनुसार पहाड़ों से हिन्दू आबादी का पलायन हो रहा है और उनके ख़ाली पड़े गाँवों पर मुसलमान क़ब्ज़ा कर रहे हैं। इसका भी वास्तविकता से दूर-दूर तक का कोई सम्बन्ध नहीं है। आप ख़ुद सोचिये कि जब एक आबादी अपने रोज़गाार, शिक्षा, चिकित्सा के अभाव और बेहतर जीवन की तलाश में पहाड़ों से पलायन कर रही है तो वहीं दूसरी आबादी इन सबके बिना पहाड़ों के गाँवों में कैसे रह सकती है! जहाँ न तो रोज़गार के साधन हैं, न ही सड़कें, बिजली और पानी की सुविधा! शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी सुविधाओं का भी जहाँ अभाव है! इन अफ़वाहों की सबसे मज़ेदार बात यह है कि इनमें कोई ठोस तथ्य या आँकड़े नहीं दिये जाते हैं।

इसके साथ ही जिस "लैण्ड जिहाद" के नाम पर मज़ारों को ध्वस्त करने का धामी सरकार का बुलडोज़र अभियान लगातार चल रहा है उसकी हकीक़त भी कुछ और है। संघियों का दावा है कि मुस्लिम उत्तराखण्ड के वन और नदी क्षेत्र की भूमि पर अवैध क़ब्ज़ा कर रहे हैं। वहाँ बस्तियाँ बसाने के साथ मस्जिद और मज़ार बना रहे हैं। जबकि वास्तविकता कुछ और है। वन विभाग के एक सर्वेक्षण के अनुसार उसकी 11 हज़ार हेक्टेयर की भूमि पर अवैध क़ब्ज़ा है। लेकिन ज़्यादातर अवैध क़ब्ज़ा मस्जिदों या मज़ारों का नहीं बल्कि मन्दिरों, आश्रमों और बड़े-बड़े रिजॉर्ट का है। 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' के एक हालिया सर्वे के अनुसार उत्तराखण्ड की वनभूमि पर मज़ारों से 10 गुना ज़्यादा मन्दिरों और आश्रमों का क़ब्ज़ा है। यही कारण है कि ग्यारह हज़ार हेक्टेयर अवैध क़ब्ज़े की भूमि से मात्र बाइस सौ हेक्टेयर भूमि को क़ब्ज़ा मुक्त करके इस बुलडोज़र अभियान को अभी फ़िलहाल रोक दिया गया है।

संघी फ़ासीवादियों के "लव जिहाद" की हक़ीक़त

उत्तराखण्ड में "लव जिहाद" के शोर की वास्तविकता यह है कि अभी तक एक भी घटना "लव जिहाद" के रूप में पुलिस रिकॉर्ड में दर्ज़ नहीं है। राष्ट्रीय जाँच एजेंसी (एनआईए) भी पहले ही कह चुकी है कि देश में "लव जिहाद" का कोई मामला नहीं मिला है। लेकिन इसके बावजूद उत्तराखण्ड के पुरोला में इसके ख़िलाफ़ हज़ारों की संख्या में जुलूस निकाला गया! मुस्लिम दुकानदारों को अपनी दुकान और मकान ख़ाली करके जाने की चेतावनी दी गयी! इसके ख़िलाफ़ ऐसा माहौल बनाया गया है कि ज़्यादातर हिन्दू आबादी इस फ़ासिस्ट प्रोपोगेण्डा को सच समझने लगी है। भले ही इसका सच्चाई से 'दूर- दूर तक का रिश्ता न हो! पुरोला में जिस नाबालिग़ लड़की के साथ यह घटना घटी, उसके परिवार का ही कहना है कि यह मामला "लव जिहाद" का नहीं है। वह ख़ुद भी इसे साम्प्रदायिक रंग देने के ख़िलाफ़ हैं। लड़की के मामा ने मीडिया को बताया कि इस घटना के बाद से ही अनेक हिन्दुत्ववादी संगठन के नेताओं के उनके पास फ़ोन आते रहे और वे उनके ऊपर इसे "लव जिहाद" का रूप देने के लिए दबाव डालते रहे! जब उन्होंने इंकार कर दिया तो नेताओं ने ख़ुद ही इसे "लव जिहाद" के रूप के प्रचारित कर दिया।

जहाँ तक "लव जिहाद" जैसे शब्द और अवधारणा की

बात है तो ये हिन्दुत्ववादी दक्षिणपन्थी संगठनों की तरफ़ से मुस्लिमों के ख़िलाफ़ फैलाया गया एक मिथ्या प्रचार है। इसकी पूरी अवधारणा ही साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देने वाली, घोर स्त्री-विरोधी और हिन्दुत्व की जाति व्यवस्था की पोषक अवधारणा है। इसके अनुसार मुस्लिम युवक अपना नाम और पहचान बदलकर हिन्दू लड़की को बरगलाकर, बहला-फुसलाकर अपने जाल में फँसाता है और उसके बाद जबरन हिन्दू लड़की का धर्म परिवर्तन करवाता है! यानी इस अवधारणा के अनुसार स्त्री का कोई स्वतन्त्र व्यक्तित्व और विचार ही नहीं होता! स्त्रियों को कोई भी बहला- फुसलाकर अपने जाल में फँसा सकता है! "लव जिहाद" के अनुसार मुस्लिम युवक जानबूझकर अपना "नाम" बदलते हैं ताकि "हिन्दू लड़कियों को फँसा सकें। यानी प्यार "नाम" पर टिका है। जैसे दो व्यक्तियों का कोई व्यक्तित्व ही न हो! उनकी अपनी पसन्दगी-नापसन्दगी ही न हो! "नाम" अगर मुस्लिम होगा तो प्यार नहीं होगा! हिन्दू होगा तो हो जायेगा !

इस पूरी अवधारणा का इस्तेमाल हिन्दुत्ववादी संगठन लगातार करते आ रहे हैं। इसे इन्होंने अपने लगातार झूठे प्रचार से व्यापक हिन्दू आबादी में स्थापित भी कर दिया है। हालाँकि यह शब्द अपने आप में ग़ैर-संवैधानिक और अमान्य है। जहाँ तक किसी स्त्री- पुरुष के प्रेम का मामला है तो भारतीय संविधान किसी भी जाति-धर्म के स्त्री-पुरुष को आपस में प्रेम करने और उसे अपना जीवनसाथी चुनने की पूरी आज़ादी देता है। अलग-अलग धर्मों-जातियों-संस्कृतियों के लोगों के बीच प्रेम-सम्बन्ध तो किसी भी समाज को ज़्यादा स्वस्थ और सुन्दर बनाते हैं। हमारे देश में भी तमाम पूर्वाग्रहों के बावजूद लाखों लोग जाति-धर्म के बन्धनों को तोड़कर प्यार और शादी करते रहे हैं और थोड़े-बहुत विरोध के बाद उन्हें स्वीकार कर लिया जाता रहा है। लेकिन पिछले एक दशक के दौरान संघ और भाजपा ने इस ख़ूबसूरत बात को भी ज़हर और नफ़रत फैलाने का ज़रिया बना डाला है।

सवाल यह उठता है कि इस तरह के मुद्दे से भाजपा और संघ को क्या मिलने वाला है?

आज देश के किसी भी हिस्से में हिन्दुत्व की राजनीति को पोषित करने वाली कोई भी घटना घटती है तो उसका देश-व्यापी फ़ायदा भाजपा को होता है। 1925 से ही संघ ने बहुसंख्यक हिन्दुओं के बीच अल्पसंख्यक मुसलमानों का जो "भय" पैदा किया है उसकी राजनीति के लिए एक छोटी सी घटना ही काफ़ी है। झूठे प्रचारों और अफ़वाहों को मिलाकर मुसलमानों की जिस मिथ्या छवि को संघ पेश करना चाहता है वो छवि अगर कहीं भी दिखती है तो इससे हिन्दुत्व की राजनीति को अपने आपको सही व जायज़ ठहराने का मौका मिलता है। उत्तराखण्ड में मुसलमानों के ख़िलाफ़ जिस "लैण्ड जिहाद" या "लव जिहाद" पर धामी सरकार कार्रवाई कर रही है, उसकी सच्चाई चाहे जो हो, लेकिन गोदी मीडिया से लेकर सोशल मीडिया द्वारा पूरे देश के पैमाने पर मुसलमानों को "भूमि जिहादी" और "लव जिहादी" बनाकर पेश किया गया है और इसमें वे एक हद तक सफल भी हुए हैं।

उत्तराखण्ड को हिन्दुत्व की प्रयोगशाला बनाने की मुफ़ीद ज़मीन भी मौजूद है। यह हिन्दुओं का धार्मिक स्थल होने के साथ ही यहाँ की बहुसंख्यक हिन्दू आबादी सवर्ण जाति से ताल्लुक रखती है। आरएसएस यहाँ हिन्दू धर्म और हिन्दुत्व की राजनीति का एक दूसरे से घालमेल करते हुए मिथकों को यथार्थ बनाते हुए सवर्ण जाति के धार्मिक और जातिगत पूर्वाग्रहों को बढ़ावा देते हुए उनके बीच अपना आधार बनाता है। यहाँ जातिगत पूर्वाग्रह की जड़ें बहुत ही गहरी हैं। यहाँ तक कि इस राज्य आन्दोलन की शुरुआत ही आरक्षण विरोध से हुई थी! ऐसे में सहज ही समझा जा सकता है कि यहाँ हिदुत्व की राजनीति के लिए कितनी मुफ़ीद ज़मीन मौजूद है।

दरअसल, ये मुद्दे व्यापक हिन्दू आबादी के बीच संघ द्वारा फैलाये गये उस "डर" को स्थापित करने का काम करते हैं जिसके मुताबिक़ अगर भाजपा या संघ न हों तो "हिन्दुओं का जीना तक मुश्किल" हो जायेगा! इन मुद्दों को उछालकर और साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण करके भाजपा अपना वोट बैंक बढ़ाने और उसे सुदृढ़ करने में कामयाब होती है। दूसरे, आज जब पूरे देश में ही शिक्षा, स्वास्थ्य, रोज़गार, महँगाई जैसे सबसे ज़रूरी मसलों पर भाजपा सरकार नाकाम हो चुकी है, तो ये मुद्दे जनता की एकता को तोड़ने और लोगों का ध्यान भटकाने के लिए सबसे कारगर हथियार भी हैं।

•

प्रेमचन्द के स्मृति दिवस (8 अक्टूबर) पर

अगर साम्प्रदायिकता अच्छी हो सकती है तो पराधीनता भी अच्छी हो सकती है। मक्कारी भी अच्छी हो सकती है, झूठ भी अच्छा हो सकता है, क्योंकि पराधीनता में ज़िम्मेदारी से बचत होती है, मक्कारी से अपना उल्लू सीधा किया जाता है और झूठ से दुनिया को ठगा जाता है। हम तो साम्प्रदायिकता को समाज का कोढ़ मानते हैं, जो हर एक संस्था में दलबन्दी कराती है और अपना छोटा सा दायरा बना सभी को उससे बाहर निकाल देती है। -प्रेमचन्द

शिक्षा जगत

“अमृतकाल” में उच्च शिक्षा

अमित (बनारस)

पिछले दो बार से देश के केन्द्रीय विश्वविद्यालयों सहित विभिन्न विश्वविद्यालयों में स्नातक में प्रवेश के लिए एनटीए की तरफ़ से सीयूईटी (यूजी) की परीक्षाएँ करायी जा रही हैं। इस बार की परीक्षा के बाद जगदेश कुमार मोमडिला ने ट्वीट करके परीक्षा सम्बन्धी आँकड़े जारी किये। इनसे पता चला कि प्रवेश परीक्षा का फॉर्म भरने वाले कुल छात्रों में से लगभग एक-चौथाई छात्रों ने परीक्षा नहीं दी। इनमें भी बड़ी संख्या अनुसूचित जाति/जनजाति से आने वाले छात्रों की थी जिनमें से लगभग आधे छात्रों ने और अनुसूचित जाति के एक-चौथाई छात्रों ने अपनी परीक्षाएँ छोड़ दीं। ये आँकड़े मीडिया में चर्चा का विषय नहीं बने।

वास्तव में यह कहानी कोई नयी नहीं है। देश में उच्च शिक्षा में सकल नामांकन अनुपात (जीईआर) लगभग 25% के आसपास है। अर्थात् जो छात्र उच्च-शिक्षा में प्रवेश की उम्र के हैं, उनमें भी केवल एक-चौथाई ही उच्च शिक्षा में प्रवेश ले पाते हैं। इन आँकड़ों की गणना में भी सरकार वैश्विक मानकों के विपरीत दूरस्थ शिक्षा, डिप्लोमा पाठ्यक्रमों आदि में प्रवेश लेने वालों को भी जोड़ लेती है। यदि सही मायने में उच्च शिक्षा में प्रवेश की स्थिति को देखें तो सच्चाई इन आँकड़ों के आसपास भी नहीं नज़र आयेगी। इतना ही नहीं, उच्च शिक्षा में प्रवेश लेने वाले इन छात्रों में एक बड़ी संख्या ऐसे छात्रों की है, जो पढ़ाई पूरी नहीं कर पाती है बल्कि बीच में ही छोड़ देती है। लेकिन मोदी सरकार ने नयी शिक्षा नीति में इन आँकड़ों के साथ बाज़ीगरी करके तस्वीर को छिपाने का पूरा इन्तज़ाम कर लिया है। ग़ौरतलब है कि नयी शिक्षा नीति में ऐसे प्रावधान किये गये हैं जो उच्च शिक्षा से ड्रापआउट छात्रों को ड्रापआउट मानने की बजाय उन्हें डिग्री/डिप्लोमा/सर्टिफिकेट कोर्स धारक मान लेंगे। ज़ाहिर है कि ऐसी स्थिति में असली तस्वीर देखने के लिए हमें आँकड़ों से अधिक गहराई में उतरना पड़ेगा। ग़ौरतलब है कि देश की आज़ादी के समय देश में 20 विश्वविद्यालय और 500 कॉलेज थे, और आज यह संख्या बढ़कर 900 विश्वविद्यालय और लगभग 40,000 कॉलेज तक पहुँच गयी है। लेकिन इसके बावजूद देश के तीन-चौथाई युवा शिक्षा हासिल करने से वंचित है।

पूरे देश में स्थिति यह है कि उच्च शिक्षा में प्रवेश के दरवाज़े आम छात्रों-युवाओं के लिए बन्द होते जा रहे हैं। मोदी सरकार

की नयी शिक्षा नीति के लागू होने के बाद यह प्रक्रिया और तेज़ हो गयी है। नयी शिक्षा नीति के ज़रिये यह प्रावधान किया गया है कि अब विश्वविद्यालयों को मिलने वाली सब्सिडी को समाप्त कर दिया जायेगा, और इसके जगह उन्हें हेफा (हायर एजुकेशन फाइनेंसियल एजेंसी) से क़र्ज़ लेना होगा। पहले चरण में विश्वविद्यालयों को अपने बजट के 30 फ़ीसदी का इन्तज़ाम ख़ुद से करने को कहा गया जिसका परिणाम यह हुआ कि पिछले एक-दो सत्रों में ही बनारस, इलाहाबाद, गोरखपुर, दिल्ली, पटना समेत देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों में फ़ीस बढ़ायी जा चुकी है। नतीज़तन बहुत से आम घरों से आने वाले छात्रों के लिए यहाँ प्रवेश लेना कठिन हो गया है। इतना ही नहीं, गोरखपुर विश्वविद्यालय ने इसी सत्र में कई पाठ्यक्रमों में लगभग 25% सीटों पर दाखिला ही नहीं कराया, अर्थात इन सीटों को ही समाप्त कर दिया गया। फ़ीस में वृद्धि और सीटों में कटौती को लेकर चलने वाले आन्दोलनों का बर्बर दमन एक आम बात हो चुकी है। छात्रों-युवाओं के अधिकारों को लेकर संघर्ष करने वाले छात्रसंघ ज़्यादातर जगहों पर समाप्त हो चुके हैं। जहाँ हैं भी, वहाँ चुनावबाज़ पार्टियों के लिए एमपी-एमएलए का ट्रेनिंग सेण्टर बने हुए हैं, जिनसे छात्रों के इन सवालों पर किसी संघर्ष की उम्मीद नहीं की जा सकती।

जो छात्र विश्वविद्यालयों में किसी तरह प्रवेश ले भी पा रहे हैं, उन्हें शिक्षकों की संख्या में भयंकर कमी, इन्फ्रास्ट्रक्चर की बदहाली से लेकर तरह-तरह की समस्याओं से जूझना पड़ता है। देश के विश्वविद्यालयों में औसतन दो-तिहाई शिक्षकों के पद ख़ाली पड़े हैं। बीएचयू, इलाहाबाद, डीयू जैसे केन्द्रीय विश्वविद्यालयों तक में हॉस्टल गिने-चुने छात्रों को ही मिल पाता है। बहुत से छात्रों के लिए बाहर रहकर कमरे के किराये आदि का ख़र्च उठा पाना ही मुश्किल हो जाता है, ऐसी स्थिति में आये दिन बहुत से छात्रों के विश्वविद्यालयों की प्रवेश परीक्षा क्वालीफाई करने के बाद भी वहाँ रह पाना सम्भव नहीं होता है।

छात्रों की जो संख्या इन समस्याओं के चक्रव्यूह से जूझते हुए किसी तरह से उच्च शिक्षा के दरवाज़ों तक पहुँच पा रही है, उनमें भी एससी/एसटी श्रेणी से आने वाले छात्रों की संख्या और भी कम है। एआईएसएचई के अनुसार भारत में उच्च शिक्षा में दाखिला लेने वाले छात्रों में 5 प्रतिशत एसटी और 14.2 प्रतिशत एससी समुदाय से थे। पीएचडी पाठ्यक्रमों तक आते-आते यह संख्या क्रमशः 2.1 प्रतिशत और 9 प्रतिशत पहुँच जाती है। 2019 में तत्कालीन शिक्षा मन्त्री रमेश पोखरियाल ने राज्यसभा में बताया कि आईआईटी और आईआईएम संस्थानों से ड्रापआउट छात्रों में 48 प्रतिशत और 62.6 प्रतिशत संख्या एससी/एसटी/ओबीसी श्रेणी से आने वाले छात्रों की है।

दूसरी तरफ़ उच्च शिक्षा में बड़े पैमाने पर खुले निजी, स्ववित्तपोषित कॉलेजों की बाढ़ आयी हुई है। 2015 में देश में ऐसे निजी या स्व-वित्तपोषित विश्वविद्यालयों की संख्या 215 थी, जो 2022 में बढ़कर 431 पहुँच चुकी है। इनमें बड़ी संख्या उनकी है, जो पैसे लेकर डिग्री बाँटने का काम करते हैं। जिनमें थोड़ी-बहुत पढ़ाई होती है, उनकी फ़ीस लाखों में हैं। ओपी ज़िन्दल विश्वविद्यालय में बीए करने के लिए एक साल की फ़ीस क़रीब 3 लाख रुपये है। एमिटी यूनिवर्सिटी में यह 3 साल में लगभग 2 लाख रुपये पहुँचती है।

वास्तव में मौजूदा दौर में जब पूँजीवाद एक भयंकर ढाँचागत संकट का शिकार है। इस संकट से निजात पाने के लिए बदहवासी में पूँजीपति वर्ग हर क्षेत्र को मुनाफ़ा कमाने के अड्डे में तब्दील कर देना चाहता है। इसी संकट की बुनियाद पर सरकारी शिक्षा तन्त्र की बर्बादी हो रही है और प्राइवेट तन्त्र को फलने-फूलने का मौका दिया जा रहा है। इसी का नतीजा है कि छात्रों की बहुत बड़ी आबादी उच्च शिक्षा से वंचित हो रही है और जिस उम्र में उन्हें विश्वविद्यालयों में होना चाहिए, उस उम्र में वो दिल्ली-मुम्बई समेत देश के औद्योगिक इलाक़ों में अपनी हड्डी गलाकर पूँजीपतियों के लिये सोने के सिक्के ढाल रही है। देश के तीन-चौथाई से भी अधिक युवा आबादी के लिए अमृतकाल का यही मतलब है।

ऐसे में हमें यह समझना चाहिए कि सबके लिए समान और निःशुल्क शिक्षा हासिल करने के लिए जुझारू संघर्ष संगठित करने के लिए विश्वविद्यालय कैम्पसों के अन्दर मौजूद छात्रों के साथ ही, कैम्पस के बाहर मौजूद छात्रों-युवाओं की बड़ी संख्या को भी लामबन्द करना होगा। अर्थात कैम्पस की चौहद्दियों के बाहर के दायरों को भी समेटता हुआ एक व्यापक छात्र-युवा आन्दोलन ही इस सबकी शिक्षा तक पहुँच सुनिश्चित कर सकता है। •

पाश के जन्मदिवस (9 सितम्बर) पर

जिन्होंने उम्र भर तलवार का गीत गाया है
उनके शब्द लहू के होते हैं
लहू लोहे का होता है
जो मौत के किनारे जीते हैं
उनकी मौत से ज़िन्दगी का सफ़र शुरु होता है
जिनका लहू और पसीना मिट्टी में गिर जाता है
वे मिट्टी में दब कर उग आते हैं।
-पाश

नूँह दंगा और सरकारी दमन : एक रिपोर्ट

भारत

बिगुल मज़दूर दस्ता की टीम कुछ अन्य जन संगठनों व बुद्धिजीवियों के साथ नूँह में फैक्ट फाइण्डिंग के लिए गयी। इस दौरान टीम ने अलग-अलग गाँवों का दौरा किया और वहाँ हुई हिंसा के पीछे की सच्चाई और मौजूदा हालात का पता लगाया। 31 जुलाई की घटना और उसके बाद के हालात को जानने से पहले वहाँ की पृष्ठभूमि पर नज़र डालते हैं।

मेव बहुल इलाक़े को मेवात क्षेत्र कहा जाता है। मेव जाति के लोग तक़रीबन 1000 साल से इस इलाक़े में बसे हुए हैं। मेवात का इलाक़ा राजस्थान, हरियाणा और उत्तर प्रदेश में फैला हुआ है। हरियाणा के हिस्से वाले मेव बहुल इलाक़े को 2005 में हरियाणा सरकार ने मेवात जिला का दर्ज़ा दिया, जोकि पूर्व के गुडगाँव और फ़रीदाबाद जिले के मेव बहुल इलाक़ों को मिला कर बनाया गया है।

मेवात जिले की जनसंख्या व आर्थिक स्थिति

2011 की जनगणना के मुताबिक़ मेवात जिले की कुल जनसंख्या 10,89,263 है, जिसमें 88.5 फ़ीसदी गाँवों में रहते हैं। 2023 में नूँह की अनुमानित जनसंख्या 14,21,933 है। धार्मिक रूप से मेवात मुस्लिम बहुल जिला है। हरियाणा में मेव जाति को पिछड़े वर्ग का दर्ज़ा दिया गया है। भारत सरकार के अल्पसंख्यक मामलों के मन्त्रालय द्वारा करवाये गये अध्ययन के मुताबिक़ मेवात जिले की कुल जनसंख्या का 70.4 फ़ीसदी मुस्लिम है, जिसमें कुल मुस्लिम आबादी का 74.3 फ़ीसदी हिस्सा देहात में बसा हुआ है। मेवात जिला बनने से पहले यह क्षेत्र मुख्यतः गुडगाँव क्षेत्र में आता था, जिसकी 61.82 फ़ीसदी जनसंख्या हिन्दू थी और मेव सहित मुसलमानों की आबादी 23.2 फ़ीसदी थी। 2005 में बना यह नया जिला मुस्लिम बहुल हो गया। संघ, विश्व हिन्दू परिषद, बजरंग दल व शिव सेना ने नया जिला बनाये जाने का विरोध किया था। मेवात जिला बनते ही संघ परिवार ने इसे साम्प्रदायिक रंग में रंगने की तैयारियाँ शुरू कर दी थी। मेवात जिले में कुल आबादी का 40 फ़ीसदी ही काम-धन्धे में लगे हुए हैं, जिसमें से लगभग 60 फ़ीसदी का मुख्य धन्धा खेती है इसमें से 15.4 फ़ीसदी खेतिहर मज़दूर के रूप में काम करते हैं मात्र 2 फ़ीसदी लोग घरेलू उद्योगों में लगे हैं और बाक़ी के 38.27 फ़ीसदी डेयरी, खनन, ट्रांसपोर्ट, कंस्ट्रक्शन जैसे अन्य काम करते हैं। मेवात में ज़मीन का मालिकाना मुख्यतः मेवों के पास है। जहाँ मेवों में कुलक, धनी किसान क्रमशः लगभग 2.25 फ़ीसदी व 7.38 फ़ीसदी है, वहीं हिन्दुओं में धनी किसान मात्र 0.46 फ़ीसदी हैं और धनी किसानों का हिस्सा 2.04 फ़ीसदी हैं। 41.31 फ़ीसदी मेव भूमिहीन है, जबकि हिन्दुओं में भूमिहीनों की संख्या 77.61 फ़ीसदी है। इस तरह यहाँ के ग्रामीण इलाक़े में धनी किसानों का ही दबदबा है।

31 जुलाई की घटना की पृष्ठभूमि

नूँह के नलहड़ गाँव में एक शिव मन्दिर है। कई सालों से इलाक़े के लोग ही इस मन्दिर को सम्भाल रहे हैं। लोग बताते हैं कि 1992 में बाबरी मस्जिद गिरने के बाद हुए दंगों के बाद भी गाँव के लोगों ने जो कि अधिकतम मुस्लिम हैं, मन्दिर की रक्षा की। बीते 20 वर्षों में मन्दिर का नव निर्माण किया गया और सावन के महीने में आस-पास के लोग वहाँ जाने लगे। विश्व हिन्दू परिषद द्वारा पिछले तीन वर्षों से ही वहाँ बृजमण्डल यात्रा निकालने की शुरुआत हुई। पिछले वर्ष भी वीएचपी ने वहाँ दंगा करने की कोशिश की और मन्दिर के पास मौजूद मज़ार को तोड़ दिया। पर गाँव के दोनों धर्मों के लोगों ने आपसी माहौल को ख़राब नहीं होने दिया।

31 तारीख़ की घटना

31 जुलाई की सोमवार को नूँह के नल्हड़ मन्दिर से विश्व हिन्दू परिषद और मातृशक्ति दुर्गावाहिनी की तरफ़ से एक कलश यात्रा फिरोज़पुर झिरका की तरफ़ रवाना हुई थी, जैसे ही वह यात्रा तिरंगा पार्क के पास पहुँची वहाँ एक समुदाय के लोग पहले से जमा थे। उनके आमने-सामने आते ही दोनों गुटों में टकराव हुआ और इसके बाद आगज़नी शुरू हुई जिसमें कई गाड़ियों को आग के हवाले कर दिया गया। पथराव में दो होम गार्ड गुरसेवक और नीरज और तीन अन्य व्यक्ति की मौत हो गयी और दस पुलिसकर्मी गम्भीर रूप से घायल हो गये। कई लोगों ने बताया कि यात्रा में क़रीब 4-5 हज़ार लोग थे, सभी बाहर से आये थे और तलवार-डण्डे आदि से लैस थे। कलश यात्रा में ढेरों नक़ाबपोश लोग भी आये थे जिन्होंने पहले दंगे की शुरूआत की।

राज्य द्वारा दमन की शुरुआत

इस घटना के बाद 1 अगस्त की सुबह से ही नूँह के अलग-अलग गाँवों में गिरफ़्तारियों का सिलसिला शुरू हो गया। नूँह में हुई हिंसा में अब तक 142 एफ़आईआर दर्ज़ की गयी है। इसके साथ ही हिंसा में तथाकथित तौर पर लिप्त अब तक 312 लोगों की गिरफ़्तारी हुई है। जिले में मुरादबास गाँव से ही अकेले 22 लोगों को गिरफ़्तार किया गया जिसमें कई नाबालिग़ भी शामिल थे।

राजदा (उम्र 22) बताती हैं कि इनके पिता को, जिनका नाम हाकिम (उम्र 60) है, उन्हें 1 अगस्त को सुबह 4:00 बजे पुलिस द्वारा घर में जबरदस्ती घुस कर गिरफ़्तार कर लिया गया। राजदा के अलावा परिवार में 6 लोग और हैं। घर का गुज़ारा थोड़ा बहुत खेती का काम करके और दूध बेचकर चलता है। राजदा बताती हैं कि उनके पिता को 19 अगस्त तक कोर्ट के सामने पेश नहीं किया गया था। 1 अगस्त की सुबह उनके घर के आस पास में 50-60 पुलिस वाले आये, लोगों से धक्का मुक्की की और मारपीट करते हुए कई लोगों को पकड़ कर ले गये। उन्होंने महिलाओं से भी बदतमीज़ी की और उनके साथ कोई महिला पुलिस भी नहीं थी। राजदा को यह तक नहीं पता कि उनके पिता कहाँ बन्द हैं।

इस दौरान उन नाबालिग़ बच्चों ने भी अपनी आपबीती सुनाई जिन्हें पुलिस ने जबरन उठा लिया था। इसी प्रकार से ऊटका, पलड़ी, नलहड़ और कई इलाक़ों से गिरफ़्तारियाँ हुई। गिरफ़्तार हुए लोगों में ज़्यादातर मुस्लिम हैं। जिन्हें पकड़ा गया उसमें बहुत से लोगों के पास वकील तक करने के पैसे नहीं हैं, न ही सरकार की तरफ़ से उन्हें वकील मुहैया कराया जा रहा है।

बुलडोज़र राज

इसके बाद सरकार द्वारा पूरे इलाक़े में घरों को ज़मींदोज़ करने की शुरुआत हुई। सरकार द्वारा प्रस्तुत आँकडों के मुताबिक़ 443 मकान ध्वस्त किए गये, जिनमें से 162 स्थायी थे और शेष 281 अस्थायी थे। विध्वंस अभियान से प्रभावित व्यक्तियों की संख्या 354 थी, जिनमें से 71 हिन्दू और 283 मुस्लिम थे। फिरोजपुर झिरका के पास दूध की घाटी इलाक़ा है, जहाँ मेहनतकश आबादी रहती है, जो बेलदारी से लेकर खेत में मज़दूरी तक का काम करती हैं। उस पूरे इलाक़े में ही क़रीब 150 घरों को सरकार द्वारा बिना कोई नोटिस दिये तोड़ दिया गया। लोगों के पुनर्वास का भी कोई इन्तज़ाम नहीं किया गया। आज भी लोग वहाँ खुले आसमान के नीचे सोने के लिए मजबूर हैं। इस जगह के अलावा नगीना, नलहड़, खेड़ा और नूँह शहर में भी दुकानों और घरों को तोड़ा गया।

नूँह में हिन्दुओं की स्थिति

संघ द्वारा ज़ोर-शोर से प्रचार किया जाता है कि मेवात इलाक़े में हिन्दू ख़तरे में है, उनका धर्म परिवर्तन किया जा रहा है। इस तरह की अफ़वाहें उड़ायी जाती है। सच्चाई इसके उलट है। जिन भी गाँवों में टीम गयी, हर जगह हिन्दू आबादी ने बताया कि वहाँ उन्हें धर्म के आधार पर कोई समस्या नहीं है, बल्कि सब लोग साथ लम्बे समय से मिलकर रह रहे हैं। उन्होंने बजरंग दल वालों पर ही आरोप लगाया कि यही लोग माहौल ख़राब करना चाहते हैं।

शान्ता 50 वर्ष से मुरादबास गाँव में रह रही हैं। यह हिन्दू परिवार है। वह बताती हैं कि हिन्दू-मुस्लिम का झगड़ा हमारे गाँव में नहीं है, जिन्हें पुलिस पकड़ कर ले गयी है, उनका कोई अपराध नहीं है। वह लोग तो उस समय घरों पर ही थे जब दंगा हो रहा था। अगर पकड़ना है तो बिट्टू बजरंगी जैसे लोगों को पकड़ो जो लोग अनाप-शनाप बोल रहे थे।

घनश्याम (उम्र 27) जवाहर नवोदय विद्यालय में सिक्योरिटी गार्ड का काम करते हैं। इन्होंने बताया जब गाँव में सब लोग सो रहे थे, तब पुलिस द्वारा रेड मारी गयी। जो कार्रवाई की जा रही है वह जायज़ नहीं है। 84 कोष की यात्रा भी निकाली जाती है और यह शान्ति से जारी है, लेकिन इसके नाम पर दंगे करना ग़लत है। हम लोग यह चाहते हैं 28 अगस्त को भी जो यात्रा निकलने वाली है, उसका शान्तिपूर्ण तरीक़े से निपटारा हो।

सारे गाँवों में डर का माहौल है। ज़्यादातर गाँवों में 20 से 50 वर्ष तक के पुरुष मौजूद नहीं हैं। उन्हें डर है कि कहीं उन्हें भी पुलिस गिरफ़्तार न कर ले। गाँवों में पुलिस की गाड़ियाँ देख लोग घरों में घुस जाते हैं। बच्चे तक स्कूल नहीं जा रहे हैं। बहुत से घरों के कमाने वाले लोग या तो गिरफ़्तार हैं या छिपे-छिपे घूम रहे हैं, जिस वजह से ग़रीब परिवारों को खाने-पीने तक की दिक़्क़त का सामना करना पड़ रहा है।

पुलिस प्रशासन ने भी जगह-जगह पुलिस और आरपीएफ की तैनाती की हुई है। हर एक आने-जाने वालों की तलाशी ली जा रही है। कहने के लिए प्रशासन और सरकार दंगाइयों पर कार्रवाई कर रही है, पर यह जगज़ाहिर है कि यह सब एकतरफ़ा कार्रवाई है। नूँह की घटना के बाद गुड़गाँव में चुन-चुन के मुस्लिम इलाक़ों को निशाना बनाया गया। मुस्लिमों को जगह छोड़ने की धमकी दी गयी। संघ द्वारा महापंचायत कर मुस्लिमों को बहिष्कार और उनके क़त्लेआम की बात कही गयी। इन सब पर खट्टर सरकार कान में तेल डाल कर सो रही है।

निष्कर्ष

असल में नूँह में मोनू मानेसर, बण्टी आदि जैसे अपराधी बजरंग दलियों और विहिप द्वारा योजनाबद्ध तरीक़े से दंगे भड़काये गये और उसके ज़रिये हरियाणा समेत पूरे देश में हिन्दू-मुसलमान दंगे फैलाने के प्रयास किये गये। इसका कारण है कि अगले साल हरियाणा और देश में चुनाव हैं और हमेशा की तरह संघ चुनाव से पहले दंगे कराने में लग गया है ताकि अगले साल वोट की अच्छी फ़सल काटी जा सके और जनता का ध्यान महँगाई, बेरोज़गारी, भ्रष्टाचार से भटकाया जा सके।

पर हरियाणा और दिल्ली में साम्प्रदायिक तनाव फैलाने की संघी हाफ़पैण्टियों की साज़िश पहले की तरह क़ामयाब नहीं हो पायी और काफ़ी दम लगाने के बाद भी दंगाई उन्माद नहीं भड़का पाये। हरियाणा और विशेष तौर पर मेवात की जनता ने दंगों को नहीं भड़कने दिया है और एकजुटता बनाये रखकर भाजपा की साज़िश को काफ़ी हद तक बेअसर किया है। फिर भी अभी हमें लगातार सावधान रहने और अपनी एकजुटता मज़बूत करने की ज़रूरत है, ताकि भविष्य में भी संघ परिवार की दंगाई साज़िशें क़ामयाब न होने पायें। •

विज्ञान जगत

सेपियंस : युवल नोआ हरारी के प्रतिक्रियावादी बौद्धिक कचरे और सड़कछाप लुगदी को मिली विश्वख्याति

सनी

युवल नोआ हरारी की पुस्तक 'सेपियंस' का नृतत्वशास्त्र, इतिहास, भाषाशास्त्र और जीव विज्ञान से कुछ भी लेना-देना नहीं है हालांकि यह इन क्षेत्रों में नयी समझ देने का दावा करती है। यह क़िताब लुगदी साहित्य का हिस्सा है जिसका स्तर सड़क किनारे बिकने वाली चेतनभगत की क़िताबों के बराबर है। अफ़सोस की बात है कि बहुत से प्रगतिशील लोग इस पुस्तक को इतिहास और मानव की उत्पत्ति समझने हेतु पढ़ और पढ़वा रहे हैं। स्कूल तथा कॉलेज के छात्र अक्सर पॉपुलर विज्ञान की क़िताबों को पढ़कर विज्ञान की नयी खोजों तथा ब्रह्माण्ड के रहस्यों को जानना चाहते हैं, वे भी आजकल हरारी की क़िताब के ज़रिये विज्ञान की अधकचरी और ग़लत समझदारी बना रहे हैं। युवल नोआ हरारी विशुद्ध मूर्ख है जो विज्ञान और इतिहास के जटिल प्रश्नों के लिए चना जोर गर्म रास्ता सुझाता है। लेकिन उसकी मूर्खता भी आज एक बड़ी आबादी में विभ्रम फैला रही है और हुक्मरानों की ही राजनीति की नुमाइश करती है। हरारी की सेपियंस पुस्तक के कुछ नतीजे देखें:

"हम दुनिया पर शासन करते हैं क्योंकि हम एकमात्र ऐसे प्राणी हैं जो उन चीज़ों पर विश्वास कर सकते हैं जो पूरी तरह से हमारी कल्पना में मौजूद हैं, जैसे कि भगवान, राज्य, धन और मानवाधिकार।

सेपियंस पारिस्थितिक क्रमिक हत्यारे हैं - यहाँ तक कि पाषाण युग के औज़ारों से भी, हमारे पूर्वजों ने कृषि के आगमन से पहले ही ग्रह के आधे बड़े स्थलीय स्तनधारियों को नष्ट कर दिया था।

पैसा आपसी विश्वास की अब तक की सबसे सार्वभौमिक और बहुलवादी प्रणाली है। पैसा ही एक ऐसी चीज़ है जिस पर हर कोई भरोसा करता है।

साम्राज्य मनुष्यों द्वारा आविष्कार की गयी सबसे सफल राजनीतिक प्रणाली है, और साम्राज्य-विरोधी भावना का हमारा वर्तमान युग सम्भवतः एक अल्पकालिक विपथन है।

पूँजीवाद महज़ एक आर्थिक सिद्धान्त न होकर एक धर्म है - और यह अब तक का सबसे सफल धर्म है। "

राज्य कल्पना है, पूँजीवाद सबसे सफल धर्म, सेपियंस यानी हम हत्यारे हैं, पैसा ही भरोसा पैदा करता है, साम्राज्य सबसे सफल राजनीतिक प्रणाली आदि नतीजे पूँजीवादी व्यवस्था के चाटुकार के नतीजे हैं जिनपर हरारी काफ़ी लन्तरानी हाँकने के बाद पहुँचते हैं। यह पुस्तक इस संकटग्रस्त पूँजीवादी शासन के शीर्ष पर बैठे बौद्धिकों की निराशापूर्ण दार्शनिक उपज का एक बेहद सस्ता संस्करण है जो मानवता को पतनशील और जन्मजात दोषी मानती है और मौजूदा गलाकाटू प्रतिस्पर्द्धा पर आधारित सामाजिक व्यवस्था का दोषारोपण 'नैसर्गिक' मानवीय गुणों में खोज लेती है। आज के दौर में पतनशील साम्राज्यवाद के थिंक टैंक से लेकर अकादमिक जगत में समझदार प्रतिक्रियावादी बौद्धिकों से लेकर मूर्ख प्रतिकियावादी बौद्धिकों का स्पैक्ट्रम थोक भाव में ऐसे ही सड़े विचार पेश कर रहा है।

'सेपियंस' क़िताब की विषयवस्तु प्राक-इतिहास से मानव की आज तक की यात्रा है जिसमें यह प्रतीत होता है कि प्राकृतिक विज्ञान और इतिहास पर विमर्श है। लेकिन वास्तव में यह राजनीतिक विमर्श है जिसका दर्शन मानवद्रोही है और विवरण इतिहास तथा विज्ञान का मिथ्याकरण करता है। क़िताब के सन्देश का विकूटीकरण करते हैं तो यह समझ आता है कि राजनीतिक तौर पर यह क़िताब मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था को, जिसमें ऊँच-नीच है, शोषण-उत्पीड़न है, जो शोषक और शोषित वर्गों में बँटी है, सही ठहराने का काम करती है। इसमें भी क़िताब कुछ नया नहीं बताती बल्कि अकादमिक और स्वतन्त्र प्रतिक्रियावादी विचारकों के घिसे-पिटे तर्कों को पुन: लोकप्रिय तरीक़े से पेश करती है।

जैविक अपचयनवाद, सामाजिक डार्विनवाद और भाववादी दर्शन की धुरी से आगे बढ़ हरारी ने इतिहास को इस प्रकार विकृत कर पेश किया है कि व्यक्तिवाद, मुद्रा संस्कृति और कुत्ताघसीटी मानवीय नैसर्गिक गुण प्रतीत होते हैं। यह रिचर्ड डॉकिन्स, अयान रैण्ड और नीत्शे सरीखे पूँजीवादी समर्थक लेखकों के तर्कों को ही पुन: पेश करती है। हरारी का मक़सद यह सिद्ध करना है कि उदारतावादी जनवादी पूँजीवाद ही इतिहास का अन्त है और हमें जिससे डरने की ज़रूरत है वह स्वयं ख़ुद "हम" ही हैं। दोष "मानव" में ही है। मानव ही

आदिम पापी है। यह आदिम पाप मानव के उद्‌भव में खोज लिया जाता है और इस तरह युद्ध, अन्याय, बर्बरता जैसी परिघटनाएँ प्राकृतिक तौर पर ही नैसर्गिक मानवीय गुण बन जाती हैं। आज इस तरह का तर्क हॉलीवुड की फ़िल्में और सीरीज़ भी दे ही रही हैं।

विज्ञान जगत की पॉपुलर क़िताबें जो छात्रों और आम जन तक कल्पना तथा वैज्ञानिक गुत्थियों को आसान शब्दों में ले जाने का दावा करती हैं दरअसल रहस्यवाद, धार्मिक पूर्वाग्रहों और मूर्खता को व्यापक स्तर पर फैला रही हैं। इसके साथ ही यूट्यूब पर तमाम विज्ञान प्रचारकों द्वारा विभ्रम फैलाया जा रहा है। इतिहास की गतिकी और समाज का ठहराव ही विज्ञान की इन पॉपुलर क़िताबों में प्रतिक्रियावादी विचारों के प्रमुख होने का कारण है। प्राकृतिक विज्ञान की समझदारी को, इसके विवेक और इसके प्रबोधनकारी प्रभाव को आमजन तक ले जाने का काम आज बुर्जुआ वर्ग के बुद्धिजीवी कर ही नहीं सकते हैं। यह काम आज एक क्रान्तिकारी जन मीडिया का ही होगा। इसे एक ज़रूरी कार्यभार मानते हुए हम ऐसे लेख आह्वान के पन्नों पर देते रहेंगे। हमारे देश में फ़ासीवादी सरकार के नेतृत्व में इतिहासबोध और वैज्ञानिक बोध पर हमला किया जा रहा है, ऐसे में यह कार्यभार और भी ज़रूरी बन जाता है। दसवीं कक्षा के पाठ्यक्रम से डार्विन की उद्विकास की अवधारणा को हटाया जा रहा है तो दूसरी तरफ़ शोध संस्थानों में गोबर के नाभिकीय किरणों से बचाव के गुण पर शोध को प्रोत्साहित किया जा रहा है, आईआईटी खड़गपुर से निकलने वाले कैलेण्डर मिथकों को वैज्ञानिक शब्दावली का मुल्लमा चढ़ाकर इतिहास के तौर पर पेश कर रहे हैं। हरारी की क़िताब और वैज्ञानिक चेतना को कुन्द करने वाले पाठ्यक्रम से पैदा मानस ऐसा होगा जो सत्ता की जी-हुज़ूरी कर सके। हरारी की क़िताब ऐसी अनेक लोकप्रिय विज्ञान की क़िताबों में प्रतिक्रियावादी विचारों को परोसने वाली क़िताबों में से एक है और हमारी कोशिश इस आलोचना के ज़रिये न सिर्फ़ हरारी की मूर्खताओं का भण्डाफोड़ करना है बल्कि सही नज़रिया रखना भी है।

'सेपियंस' क़िताब के चार हिस्से हैं: संज्ञानात्मक क्रान्ति, कृषि क्रान्ति, मानव जाति का एकीकरण और वैज्ञानिक क्रान्ति। हरारी के अनुसार:

"इतिहास की प्रक्रिया को तीन महत्त्वपूर्ण क्रान्तियों ने आकार दिया : संज्ञानात्मक क्रान्ति (कॉग्नीटिव रिवोल्यूशन) ने लगभग 70,000 साल पहले इतिहास को क्रियाशील किया। कृषि क्रान्ति ने 12,000 साल पहले इसे तीव्र गति दी। वैज्ञानिक क्रान्ति, जो सिर्फ़ 500 साल पहले शुरू हुई थी, शायद इतिहास को ख़त्म कर सकती है और किसी पूरी तरह से भिन्न चीज़ की शुरुआत कर सकती है। इन तीन क्रान्तियों ने मनुष्यों और उनके सहचर जीवों को किस तरह प्रभावित किया है, यह पुस्तक इसी का क़िस्सा कहती है।"

पुस्तिका में जिस क्रम में कुतर्क गढ़े गये हैं हम उन पर सिलसिलेवार बात करेंगे। यहां हमारा मक़सद उनके हर कुतर्क का खण्डन करना नहीं है बल्कि उनकी कुछ आम ग़लत अवधारणाओं को इंगित करना और उनका खण्डन करना है। क्योंकि हर पन्ने पर हरारी ने जितनी मूर्खता की है उस पर लिखने के लिए अलग से एक पुस्तक ही लिखनी होगी।

'संज्ञानात्मक क्रान्ति' के नाम पर मानव उद्भव में श्रम की भूमिका पर चोट

हरारी मनुष्य की "संज्ञानात्मक क्षमता" को श्रम की उपज यानी उसके इतिहास की उपज मानने की जगह एक आकस्मिकता मानता है। हरारी के अनुसार:

"आज हमारा बड़ा दिमाग़ अच्छा परिणाम दे रहा है, क्योंकि हम ऐसी कारें और बन्दूकें बना सकते हैं जो हमें चिम्पांजी की तुलना में बहुत तेज़ चलने में सक्षम बनाती हैं, और कुश्ती के बजाय उन्हें सुरक्षित दूरी से मार सकती हैं। लेकिन कारें और बन्दूकें एक हालिया घटना हैं। 2 मिलियन से अधिक वर्षों तक, मानव तन्त्रिका नेटवर्क विकसित और विकसित होता रहा, लेकिन कुछ चकमक चाकू और नुकीली छड़ियों के अलावा, मानव के पास दिखाने के लिए कुछ भी नहीं था। फिर किस चीज़ ने मानव मस्तिष्क के विकास को आगे बढ़ाया? सच कहूँ तो, हम नहीं जानते। यह प्रकृति के सबसे बड़े रहस्यों में से एक है। "

"हम नहीं जानते" से आगे बढ़ हरारी भाववादी दर्शन तक पहुँच चेतना के उद्‌भव को आकस्मिक जैनेटिक बदलाव बताता है। यह किसी ईश्वरीय चमत्कार की तरह ही घटित होता है। यह उद्विकास की प्रक्रिया की भाववादी व्याख्या है। हरारी के अनुसार:

"70,000 और 30,000 साल पहले के बीच के वक़्त में सोचने और सम्प्रेषित करने के नये तरीक़ों के आविर्भाव को संज्ञानात्मक क्रान्ति (कॉग्नीटिव रिवोल्यूशन) की संज्ञा दी जा सकती है। इस क्रान्ति को किस चीज़ ने जन्म दिया? हम निश्चित तौर पर नहीं जानते। जिस सिद्धान्त को सबसे ज़्यादा मान्यता प्राप्त है, वह कहता है कि आकस्मिक जेनेटिक उत्परिवर्तनों (म्यूटेशंस) ने सेपियंस के मस्तिष्कों की अन्दरूनी वायरिंग को बदलकर उनको अपूर्व ढंग से सोचने और सर्वथा नयी भाषा का इस्तेमाल करते हुए सम्प्रेषण करने में सक्षम बना दिया। हम इसे ज्ञान-वृक्ष परिवर्तन की संज्ञा दे सकते हैं। "

"ज्ञान वृक्ष परिवर्तन" हेगेल की तरह ही इतिहास को "सर के बल" खड़ा करना है। दूसरी बात, यह मनुष्य के उद्‌भव में श्रम की भूमिका को काट देता है और मस्तिष्क को यानी चेतना को प्रधान घोषित करता है। यह भाववादी दर्शन है। एंगेल्स ने इसपर चोट करते हुए कहा था कि:

"प्रथमतः मस्तिष्क की उपज लगने वाले और मानव

समाजों के ऊपर छाये प्रतीत होने वाले इन सारे सृजनों के आगे श्रमशील हाथ के अधिक साधारण उत्पादन पृष्ठभूमि में चले गये। ऐसा इस कारण से भी हुआ कि समाज के विकास की बहुत प्रारम्भिक मंज़िल से ही (उदाहरणार्थ आदिम परिवार से ही) श्रम को नियोजित करने वाला मस्तिष्क नियोजित श्रम को दूसरों के हाथों से करा सकने में समर्थ था। सभ्यता की द्रुत प्रगति का समूचा श्रेय मस्तिष्क को, मस्तिष्क के विकास एवं क्रियाकलाप को दे डाला गया। मनुष्य अपने कार्यों की व्याख्या अपनी आवश्यकताओं से करने के बदले अपने विचारों से करने के आदी हो गये (हालाँकि आवश्यकताएँ ही मस्तिष्क में प्रतिबिम्बित होती हैं, चेतना द्वारा ग्रहण की जाती हैं)। अतः कालक्रम में उस भाववादी विश्वदृष्टिकोण का उदय हुआ जो प्राचीन यूनानी-रोमन समाज के पतन के बाद से तो ख़ास तौर पर मानवों के मस्तिष्क पर हावी रहा है। वह अब भी उन पर इस हद तक हावी है कि डार्विन पन्थ के भौतिकवादी से भौतिकवादी प्रकृति विज्ञानी भी अभी तक मनुष्य की उत्पत्ति के विषय में स्पष्ट धारणा निरूपित करने में असमर्थ हैं क्योंकि इस विचारधारा के प्रभाव में पड़ कर वे इस में श्रम द्वारा अदा की गयी भूमिका को नहीं देखते।"

हरारी के "ज्ञान वृक्ष परिवर्तन" के आकस्मिक जेनेटिक म्यूटेशन्स की अवधारणा उद्विकास की भाववादी अवधारणा है। साथ ही यह जैविक अपचयन का ही एक संस्करण है। इस समझ के अनुसार समाज में कुछ लोग विजेता हैं जो इस सामाजिक संरचना में ऊँचे पायदान पर हैं, वहीं कुछ लोग निचले पायदान पर उनकी जैविक संरचना के कारण होते हैं। इस अवधारणा के अनुसार हमारे शरीर का आनुवंशिक तत्व जो कि डीएनए के रूप में मौजद होता है यही तय करता है कि कोई मनुष्य अमीर होगा या ग़रीब। हरारी के "ज्ञान वृक्ष परिवर्तन" की उद्विकास की अवधारणा के बाद हम मानव उद्भव में श्रम की भूमिका को नकारने पर बात करेंगे।

हरारी के "ज्ञान वृक्ष परिवर्तन" की भाववादी अवधारणा और उसके जैविक अपचयन का आधार समझने के लिए हमें जैनेटिक म्युटेशंस और उद्विकास की प्रक्रिया को समझना होगा। जीवन के रूपों के बदलाव को उद्विकास (इवोल्यूशन) कहते हैं और यह सवाल जीवन की उत्पत्ति से जुड़ा हुआ है। जीवाश्म, डीएनए और क्लैडिस्टिक्स के अध्ययन से जीवन के रूपों और उनके उद्विकास के नियमों को जाना गया है। जैव जगत में तमाम प्रजातियाँ विलुप्त होती रहती हैं और आज का जीव जगत वैसा नहीं है जैसे यह पहले था। वायरस, बैक्टीरिया, लंगूर से लेकर केकड़ा सभी प्रजातियाँ पहले मौजूद प्रजातियों से विकसित होकर अस्तित्व में आयी हैं। कई प्रजातियाँ एक ही प्रजाति से फूट कर पैदा हुई हैं जैसे पेड़ के तने से कई शाखाएं निकलती हैं। समुद्र की गहराई से लेकर रेगिस्तान की तपिश में जीवन अपनी विविधता के साथ मौजूद है। जीवन की इस विविधता की इकाई प्रजाति है। एक प्रजाति के जीवों के बीच भी अन्तर मौजूद होते हैं जबकि समानता आनुवंशिकता के कारण दिखती है। समानता और अन्तर का द्वन्द्व आनुवंशिकता और अनुकूलन के द्वन्द्व के रूप में उभरकर आता है। आज धरती पर नई प्रजातियों के साथ ही कई ऐसी प्रजातियाँ भी मौजूद हैं जो बेहद पुरानी हैं और कई प्रजातियाँ विलुप्त हो चुकी हैं। समुद्र की लहरों में बहकर आती सीपियाँ, जेली फिश की भिन्न प्रजातियों से लेकर गौरैया, क्यारियों में मौजूद गिरगिट और रेगिस्तान के कैक्टस अलग प्राकृतिक परिस्थिति में रहते हैं और यह अपनी परिस्थितियों को भी अलग तरीक़े से प्रभावित करते हैं।

पहले जीवन के रूपों को स्थैतिक माना जाता था। इसे लैमार्क और डार्विन के साथ 19वीं शताब्दी के कई वैज्ञानिकों ने चुनौती दी। सबसे महत्वपूर्ण क़दम डार्विन ने उठाया और उन्होंने यह दर्शाया कि जीवन के रूप बदलते हैं और यह बदलाव नियमों से बँधा है। डार्विन ने हर प्रजातियों में अन्तर और साथ ही एक प्रजाति के जीवों में अन्तर को रेखांकित किया। इस अन्तर को उन्होंने वैरिएशन कहा। जीव और उसके शावक में यह अन्तर कम होता है, हालांकि शावकों के बीच भी वैरिएशन मौजूद होते हैं। इसे ही आनुवंशिकता कहते हैं कि जीव अपने गुण अपने शावक को देते हैं। यह प्रक्रिया भी एककोशिकीय जीव और बहुकोशिकीय जीव, जैसे मनुष्य, में अलग तरीक़े से होती है। आनुवंशिकता और वैरिएशन का द्वन्द्व ही प्रजातियों के विस्तृत जटिल झुरमुट के विकास को नियम में बाँधता है।

डार्विन ने पर्यावरणीय, अन्तरजातीय, सजातीय प्रतियोगिता के ज़रिये प्राकृतिक चयन को उद्विकास का आधार बताया जिसके अनुसार प्रजातियों में क्रमिक बदलाव आते हैं। हालाँकि आज यह सिद्ध हो चुका है कि बदलाव सिर्फ़ क्रमिक नहीं बल्कि छलाँग के रूप में भी होते हैं। साथ ही जीवों में केवल प्रतियोगिता नहीं बल्कि सहयोगिता भी होती है। डार्विन ने उद्विकास के पीछे जीवन के आन्तरिक कारण को उद्घाटित किया। हालाँकि डार्विन उद्विकास के पीछे कार्यरत प्रेरक शक्तियों को, कार्य-कारण सम्बन्धों को समझने में और कुल मिलाकर पद्धति में यान्त्रिक/अधिभूतवादी रहते हैं। लेकिन डार्विन का योगदान यह रहा कि उन्होंने जीवन के विकास में किसी भी दैवीय शक्ति के लिए हमेशा के लिए दरवाज़ा बन्द कर दिया। इस दरवाज़े को ही हरारी फिर से खटखटा रहा है।

आगे बढें, हर प्रजाति का हर जीव एक-दूसरे के अधिक समान होता है और दूसरी प्रजाति के जीव से अधिक असमान होता है। इस समानता और अन्तर का मापक जीन ही होता है। इन समानताओं और अन्तरों की एकता ही जीवन को व्याख्यायित करती है। जीन क्या होते हैं? डीएनए की चोटीनुमा गुथी-बुनी संरचना में शुगर बेस यानी न्युक्लियोटाइड के

अनुक्रम को ही जीन कहते हैं। डीएनए हमारे शरीर की हर कोशिका में मौजूद होता है। नये जीव की जैनेटिक संरचना दो भिन्न जैनेटिक संरचना के जीवों के प्रजनन के दौरान बदलती है। यह बदलाव जीव के भीतर की कोशिकाओं में बदलाव के ज़रिये भी हो सकता है। इसे जैनेटिक म्युटेशन कहते हैं। अगर म्युटेशन बेहद अधिक हो जाए तो यह कैंसर का कारण बनता है। प्रजनन के अलावा जैनेटिक संरचना में बदलाव यानी म्युटेशन का घटित होना एक जटिल प्रक्रिया है। परन्तु क्या जीवन के रूपों का विकास केवल जीन तय करते हैं? नहीं, जीन जीव के शरीर की संरचना को बाह्य परिस्थितियों से गुथ-बुनकर आकार देता है। यही जीव के चरित्र में अभिव्यक्त होता है मसलन आँख का रंग, बालों का रेशमी या घुँघराला होना। यह हर जन्तु को दूसरे से अलग करता है। परन्तु एक बात साफ़ है कि केवल जीन यह नहीं तय करते कि जन्तु की शारीरिक बनावट कैसी होगी बल्कि यह पर्यावरण या बाह्य परिस्थिति भी तय करती है। जो जीव दी गयी परिस्थिति में 'फिट' होगा, वह जीवित रहता है और उनका ही 'प्राकृतिक चयन' हो सकता है। यानी जीन का चुनाव भी बाह्य परिस्थितियों द्वारा होता है। जीव जगत की इस अवधारणा को ही 'सरवाइवल ऑफ द फिटेस्ट' कहते हैं। जो जीव दी गयी परिस्थिति में 'फिट' होगा, वह जीवित रहता है और उनका ही 'प्राकृतिक चयन' हो सकता है। यह भी दो स्तर पर सटीक नहीं है: एक यह कि जीव जगत में भी केवल प्रतिस्पर्द्धा नहीं बल्कि सामंजस्य भी होता है। दूसरा यह कि एक जीव केवल पर्यावरण से प्रभावित नहीं होता है बल्कि यह पलटकर भी पर्यावरण को प्रभावित करता है। यानी प्रकृति ही 'चयन' नहीं करती बल्कि जीव भी 'चयन' करते हैं। यह हरारी की भाववादी अवधारणा की धज्जियाँ उड़ा देता है क्योंकि यह जीवन के रूपों के विकास की द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी व्याख्या है। जैनेटिक म्यूटेशन्स "शून्य" में और "आकस्मिकता" से नहीं घटित हाते हैं। भौतिक जगत की अनिवार्यता ही "आकस्मिकता" में अभिव्यक्ति पाती है। यह अनिवार्यता जीव, उसकी जैनेटिक संरचना तथा उसके पर्यावरण की अन्तरक्रिया है। यही हरारी के आकस्मिक म्युटेशंस की भाववादी अवधारणा का खण्डन है।

जीव जगत और मानव जगत में अन्तर है कि मानव उत्पादन कर सकता है जबकि जीव जगत के अन्य जन्तु प्रकृति का उपभोग करते हैं। उत्पादन करने वाले समाज में प्रकृति के वे नियम काम नहीं करते जो जंगल में धूप के लिए प्रतिस्पर्द्धा करने वाले पेड़ों तथा सीमित संसाधनों पर जीवित रहने वाले जीवों के बीच होगा। मानव समाज में उत्पादकता एक सामूहिक व्यवहार है जो कि सामंजस्य से ही सम्भव हो सकता है। यहाँ उपयुक्तम की उत्तरजीविता लागू नहीं होती है। मानव समाज में अमीर और ग़रीब होना उत्पादन पद्धति से तय होता है न कि मानव की जैविक संरचना से। दूसरी बात यह कि मानव, मानव सामाजिक तौर पर बनता है। जन्मजात प्रतिभा की अवधारणा बकवास है। प्रतिभा पैदा नहीं होती बल्कि सामाजिक तौर पर विकसित होती है। इसका यह मतलब नहीं कि दो मनुष्य समान होंगे परन्तु उनका शारीरिक रूप क्या होगा यह उनकी जैनेटिक संरचना अकेले निर्धारित नहीं करती। जन्म ले चुके शिशु की शारीरिक संरचना भी उसकी प्रतिभा को तय नहीं करती। यह हर व्यक्ति की जीवन-प्रक्रिया के बहुआयामी अन्तरविरोधों से निर्धारित होती है।

बहरहाल हम वापस मुख्य चर्चा के दूसरे पहलू पर आते हैं। उत्पादन करने वाला मानव प्रकृति को बदल देता है और अपनी ज़रूरतों को पूरा करता है। ऐतिहासिक तौर पर मानव श्रम के ज़रिये ख़ुद को गढ़ता है। यह कथन कोई साहित्यिक अभिव्यक्ति नहीं बल्कि यह समझाता है कि निश्चित ही जैनेटिक बदलाव ही कारण रहे हैं जो कि मानव के भी उद्विकास को तय करते हैं परन्तु यह जिन परिस्थितियों में या बाह्य पर्यावरण में कार्यरत हैं वह मानव श्रम द्वारा ही तय होता है। मानव का उद्भव लैमार्क की तरह गर्दन ऊँची करने वाले जिराफ़ के रूप में नहीं बल्कि श्रम करने वाले मानव द्वारा निर्मित पर्यावरण की मध्यस्तता में उद्विकास हुआ है। कबीलाई समाज में एक लम्बे समय तक जीव की अनिश्चितताओं के बीच मृत्यु दर अधिक होती थी और एक लम्बी प्रक्रिया में श्रम करने के लिए उपयुक्त होने वाले हाथ वाले हमारे पुर्खे ही 'चयनित' होते रहे। लेकिन यह प्रक्रिया कोई गलाकाटू प्रतिस्पर्द्धा के रूप में नहीं घटती है। हाथ श्रम का उत्पाद भी है और उसका अंग भी। आज वैज्ञानिक शोध यह सिद्ध करते हैं कि मानव के हाथ और अन्य प्राइमेट्स के हाथों में अन्तर बनावट से अधिक तन्त्रिकाओं के विकास का है। मानव का हाथ उसकी चेतना से जुड़ा हुआ है। मनुष्य की मेहनत ने ही मनुष्य को गढ़ने का काम किया है। यह उसका सामाजिक व्यवहार था जो उसके शरीर को गढ़ रहा था।

परन्तु हरारी मानव के मानव बनने के लिए ज़िम्मेदार श्रम की प्रक्रिया को ग़ायब कर देता है। वह मानता है कि मनुष्य का दौ पैरों पर खड़ा होना, उसके हाथों का आज़ाद होना, बुनियादी औज़ार बनाना आदि मानव मष्तिष्क को नहीं गढ़ते हैं बल्कि यह "ज्ञान वृक्ष परिवर्तन" यानी "आकस्मिक जेनेटिक म्यूटेशन्स" से होता है। यह मानव उद्भव की लम्बी प्रक्रिया को धता बताना है। आइये इस पर चर्चा कर लें।

इंसान के पूर्वजों से इंसान ने काफ़ी हद तक शारीरिक विशेषताएँ तथा गुण हासिल कर लिए थे जो उसके विकास के लिए ज़रूरी थे। विकास मुख्यतः पेड़ों को छोड़ कर ज़मीन पर जाने से हुआ। ज़मीन पर उसके हाथ आज़ाद हो गये थे। आँख और हाथों के बीच का भी बेहतर समन्वय विकसित हुआ जिससे वस्तुओं को छूने, आकार समझने व पकड़ने में आसानी हो गयी। उसकी आँखें आसानी से दूरी माप सकती

हैं और जटिल दिमाग़ व तन्त्रिका तन्त्र के कारण ही किसी वस्तु को हाथों में महसूस कर सकती है व आँखों द्वारा बनाए चित्र से मिलान कर सकती है। यही वह भौतिक ज़रूरत है जो इंसान को औज़ार बनाने के लिए चाहिए। औज़ार के साथ-साथ भाषा का उद्भव भी बेहद ज़रूरी था क्योंकि बिना एक-दूसरे से अनुभव साझा किए इंसान औज़ार जैसी रचना उस समय नहीं कर सकता था। यह चेतना का विकास ही इंसान को जानवरों से अलग करता है। कुछ वानर भी औज़ारों का इस्तेमाल कर सकते हैं परन्तु उनका यह इस्तेमाल बेहद सीमित होता है और ये जानवर किसी भी काम को करते हुए महज़ अपने दैनिक जीवन को जीते हैं और इन कार्यों को स्वभावतः व आदतन करते हैं, जैसे इंसान का बच्चा रोता है या आँखें झपकाता है, या जैसे दिल धड़कता है। घोंसला, छत्ता, शहद, बाँध, नाली से लेकर लोज तक बनाने वाले जानवरों से इंसान अलग है क्योंकि इंसान इन सभी कार्यों को पूर्वकल्पित योजना बनाकर अंजाम देता है यानी काम से पहले काम का विचार मौजूद होता है। इस प्रक्रिया को ही श्रम कहा जाता है। यह निश्चित ही इंसान का श्रम था जिसने इंसान को इंसान बनाया। श्रम यानी वह क्रिया जिसमें इंसान अपनी मेहनत के उत्पाद की किसी न किसी हद तक पूर्वकल्पना करता है। श्रम ही वे अन्य चीज़ें पैदा करता है जो भौतिक तौर पर इंसान और जानवरों के बीच अन्तर पैदा करता है। गॉर्डन चाइल्ड के शब्दों में 'इंसान ने ख़ुद को बनाया है। ' यह लामार्कियन पद्धति से चरित्र की आनुवांशिकी के हासिल किये जाने की प्रक्रिया नहीं थी बल्कि श्रमशील मानव का एक प्रक्रिया में चुना जाना था। 35 लाख साल पुराने हमारे पुरखे आस्ट्रेलोपिथेकस आफ्रेनस के जीवाश्म से यह पता चलता है कि उसके मष्तिष्क का आकार अभी केवल 400 मिलीलीटर था। अफ़्रीका में मिला 'लुसी' का जीवाश्म इसकी ताकीद करता है। इस वक़्त मानव ने पैरों पर खड़ा होकर चलना शुरू कर दिया था हालांकि अभी तक उसने औज़ार बनाने नहीं शुरू किए थे। 25 लाख साल पहले मानव ने औज़ार का इस्तेमाल शुरू किया। यही वह क़दम है जो मानव को जीव जगत से अलग कर देता है। रिचर्ड लिकी बताते हैं कि -

"अफ़्रीका के जीवाश्मों से पता चलता है होमिनिड आकार में वानर जैसे थे। सम्भवतः होमिनिड अपने वानर रिश्तेदारों से बहुत अलग थे क्योंकि वे दो पैरों पर भी चल रहे थे। लेकिन उनकी जीवनशैली जैसी भी हो परन्तु ऐसा नहीं लगता कि उन्हें एक विस्तारित मस्तिष्क की ज़रूरत थी। 20 लाख साल पहले तक ही होमो हैबिलिस का पुख़्ता सबूत मिलता है जिसकी कपाल क्षमता 800 मिलीलीटर के क़रीब थी।

"इस प्राणी का मस्तिष्क लुसी से लगभग दोगुना बड़ा था, लेकिन कद में कोई बड़ा नहीं था। होमिनिड विकास में अगला क़दम, होमो इरेक्टस ने और भी बड़ा मस्तिष्क विकास दिखाया, जो 1000 मिलीलीटर तक पहुँच गया। "

होमो हैबिलिस से होमो इरेक्टस तक और उसके आगे आधुनिक मानव तक औज़ार बनाने की क्षमता विकसित होती है और उसका मष्तिष्क भी। उन्नत चेतस क्षमता श्रम की प्रक्रिया से विकसित होती है जिसकी ताकीद उन्नततर होते औज़ार करते हैं। युवल नोआ हरारी ने बड़ी ही चालाकी से इस प्रक्रिया का जैविक अपचयन कर दिया है। इस पूरी प्रक्रिया में उन्होंने मनुष्य के मनुष्य बनने की प्रक्रिया के भौतिक आधार को ही पूरी तरीक़े से ग़ायब कर दिया है। मनुष्य के मनुष्य बनने की प्रक्रिया में सबसे प्रमुख भूमिका श्रम की रही है। उसने श्रम की प्रक्रिया में औज़ार बनाने की जो क्षमता हासिल की, उसके ज़रिये ही मनुष्य का हाथ मुक्त हुआ, और हाथों की गति की प्रक्रिया में उसके मस्तिष्क का विकास हुआ।

एंगेल्स लिखते हैं कि :

"किसी भी वानर के हाथ पत्थर की भोंडी छुरी भी आज तक नहीं गढ़ सके हैं। अतः आरम्भ में वे क्रियाएँ अत्यन्त सरल रही होंगी, जिन के लिए हमारे पूर्वजों ने वानर से नर में संक्रमण के हज़ारों वर्षों में अपने हाथों को अनुकूलित करना धीरे-धीरे सीखा होगा। फिर भी निम्नतम प्राकृत मानव भी वे प्राकृत मानव भी जिन में हम अधिक पशुतुल्य अवस्था में प्रतिगमन तथा उस के साथ ही साथ शारीरिक अपह्रास का घटित होना मान ले सकते हैं, इन अन्तर्वर्ती जीवों से कहीं श्रेष्ठ हैं। मानव हाथों द्वारा पत्थर की पहली छुरी बनाए जाने से पहले शायद एक ऐसी अवधि गुज़री होगी जिस की तुलना में ज्ञात ऐतिहासिक अवधि नगण्य सी लगती है। किन्तु निर्णायक पग उठाया जा चुका था। हाथ मुक्त हो गया था और अब से अधिकाधिक दक्षता एवं कुशलता प्राप्त कर सकता था। तथा इस प्रकार प्राप्त उच्चतर नमनीयता वंशागत हेती थी और पीढ़ी दर पीढ़ी बढ़ती जाती थी। अतः हाथ केवल श्रमेन्द्रिय ही नहीं हैं, वह श्रम की उपज भी है। श्रम के द्वारा ही, नित नयी क्रियाओं के प्रति अनुकूलन के द्वारा ही, इस प्रकार उपार्जित पेशियों, स्नायुओं- और दीर्घतर अवधियों में हड्डियों-के विशेष विकास की वंशागतता के द्वारा ही, तथा इस वंशागत पटुता के नए, अधिकाधिक जटिल क्रियाओं मे नित पुनरावृत्ति के द्वारा ही मानव हाथ ने वह उच्च परिनिष्पन्नता प्राप्त की है जिस की बदौलत राफ़ायल की सी चित्रकारी, थोर्वाल्दसेन की सी मूर्तिकारी और पागनीनी का सा संगीत आविर्भूत हो सका।"

यह मानव उद्भव की भौतिकवादी व्याख्या है। उद्विकास तथा मानव उद्भव की यह भौतिकवादी व्याख्या ही हरारी का निशाना है। हरारी की पुस्तक की संज्ञानात्मक क्रान्ति की मुख्य धुरी यही है।

अगले हिस्से में हम हरारी द्वारा ज्ञान सिद्धान्त, दिमाग़ कैसे बना, जैविक अपचयन से सामाजिक डार्विनवाद में छलाँग तथा भाषा विज्ञान के साथ की गयी तोड़-मरोड़ की पड़ताल करेंगे। •

शिक्षा जगत

पाठ्यक्रम में बदलाव : फ़ासीवादी सरकार द्वारा नयी पीढ़ी को कूपमण्डूक और प्रतिक्रियावादी बनाने की साज़िश

रस्टी

फ़ासीवादी सरकार अगर किसी चीज़ से डरती है तो वो है लोगों के तार्किक होने और उनके सवाल करने से। इसलिए हर फ़ासीवादी सत्ता लोगों को झूठे, अतार्किक और प्रतिक्रियावादी रास्ते पर ले जाना चाहती है। फ़ासीवादी सत्ता हर उस चीज़ का विरोध करती है और उसे नष्ट करने की कोशिश करती है जो झूठ और अज्ञान पर आधारित उनके दुष्प्रचार और मिथ्याकरण के ख़िलाफ़ समाज को तार्किक और वैज्ञानिक चेतना से लैस करती है। इसी का ताज़ा उदाहरण नवीं और दसवीं कक्षा के सिलेबस से आवर्त सारणी (पीरियोडिक टेबल) और डार्विन के विकास के सिद्धान्त (थ्योरी ऑफ़ इवोल्यूशन) को राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद् (एनसीईआरटी) द्वारा हटाया जाना है। यह पहली बार नहीं है जब भाजपा के सत्ता में आने के बाद से सिलेबस में बदलाव किया गया हो। इससे पहले भी इतिहास व अन्य विषयों में कई बदलाव इस फ़ासिस्ट सरकार ने किया था। उदाहरण के लिए वर्ण-जाति व्यवस्था के उद्गम को ग़ायब करना, पूरे इतिहास के साम्प्रदायिक पाठ को पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाना आदि। एनसीईआरटी द्वारा सिलेबस से पीरियोडिक टेबल और इवोल्यूशन हटाने के कई कारण बताये गये हैं। हम एक-एक करके सारे कारणों का खण्डन करेंगे और यह साबित करेंगे कि पाठ्यक्रम में बदलाव बच्चों को अतार्किक बनाने की एक साज़िश है।

पाठ्यक्रम में बदलाव करने का सबसे पहला तर्क बच्चों के बोझ को हल्का करने का दिया जा रहा है। उनके अनुसार कोविड-19 के बाद बच्चों पर पढ़ाई का दबाव बहुत बढ़ गया है, जिससे बच्चे मानसिक रूप से प्रभावित हो रहे हैं। जिसे कम करने के लिए पाठ्यक्रम में बदलाव करने की ज़रूरत थी। पर असल में यह उसी कड़ी को आगे बढ़ाने की कोशिश है जिसके तहत इससे पहले इतिहास के पाठ्यक्रम में बदलाव किया गया था। आवर्त सारणी (पीरियोडिक टेबल) रसायन विज्ञान का बिल्कुल बुनियादी अध्याय है, जिसके बिना रसायन विज्ञान को समझना नामुमकिन सा हो जायेगा। उसी तरह डार्विन के उद्भव के विकास का सिद्धान्त भी जीव-विज्ञान को समझने के लिए बेहद ज़रूरी अध्याय है। डार्विन के इस सिद्धान्त को विज्ञान के विकास में एक मील का पत्थर माना जाता है, जिसने इंसान के उद्भव के इतिहास और विज्ञान को खोल कर रख दिया था। अर्थात इसको न पढ़ना आज से 200 साल पीछे जाने जैसा होगा। ये दोनों ही विषय छात्रों को एक वैज्ञानिक समझ प्रदान करते हैं और इससे सोचने-समझने की एक पहुँच विकसित होती है। इसलिए इसे हटाया जाना बच्चों पर मानसिक दबाव कम करना नहीं बल्कि भोथरा बनाना है।

इसी में दूसरा तर्क देते हुए एनसीईआरटी ने बयान दिया कि बच्चों को 11वीं कक्षा में विस्तार ये सारी चीज़ें पढ़नी ही हैं। एनसीईआरटी के अनुसार -

'कक्षा 12 की जीवविज्ञान की पुस्तक में एक पूरा अध्याय 'उद्विकास' को समर्पित है जहाँ डार्विनियन सिद्धान्तों सहित विकास के विभिन्न सिद्धान्तों को पहले से ही विस्तार से पढ़ाया जा रहा है। इस अध्याय में विकास के 'बिग बैंग थ्योरी' और अन्य विकास सिद्धान्तों के अलावा डार्विन के विकास के सिद्धान्त की दोनों प्रमुख अवधारणाओं - 'ब्रांचिंग डिसेण्ट' और 'प्राकृतिक चयन' को पढ़ाया जा रहा है। इसीलिए छात्रों के भार को कम करने और अध्यायों की पुनरावृत्ति से बचने के लिए 10वीं कक्षा में 'आनुवंशिकता और विकास' (hereditary and evolution) अध्याय के स्थान पर 'आनुवंशिकता' अध्याय जोड़ा गया है, जो सर्वथा उचित है। इससे विद्यार्थियों को अनावश्यक रूप से लगभग एक ही पाठ्य सामग्री दो कक्षाओं में नहीं पढ़नी पड़ेगी। '

ऐसा ही तर्क वे पीरियोडिक टेबल के लिए भी देते हैं। पर इसका दूसरा पहलू यह है कि दसवीं तक की पढ़ाई बुनियादी पढ़ाई होती है जिसके बाद ही विषयों

का विभाजन होता है। लेकिन वैसे बच्चे जो दसवीं के बाद विज्ञान या जीव-विज्ञान नहीं पढ़ पाते, उनके लिए यह सारी चीज़ें जान पाना तो नामुमकिन ही हो जायेगा। मतलब यह कि रसायन विज्ञान और जीव विज्ञान की बेहद बुनियादी चीज़ों से वे अनजान रह जायेंगे। इसके अलावा पढ़ाने के तरीक़े में भी नीचे की कक्षाओं में बुनियादी चीज़ें बतायी जाती हैं ताकि एक समझदारी पहले से तैयार हो जाये जिसके बाद इसे आगे समझना आसान हो जाये। अर्थात एनसीईआरटी द्वारा छात्रों का भार कम करने का तर्क और भी बेकार हो जाता है, क्योंकि बिना कुछ जाने 11वीं या 12वीं में सीधा पढ़ने पर बच्चों पर भार ज़्यादा बढ़ेगा। साफ़ है कि ऊपर दिये गये सारे तर्क बेबुनियाद हैं, जिनका कोई आधार ही नहीं है।

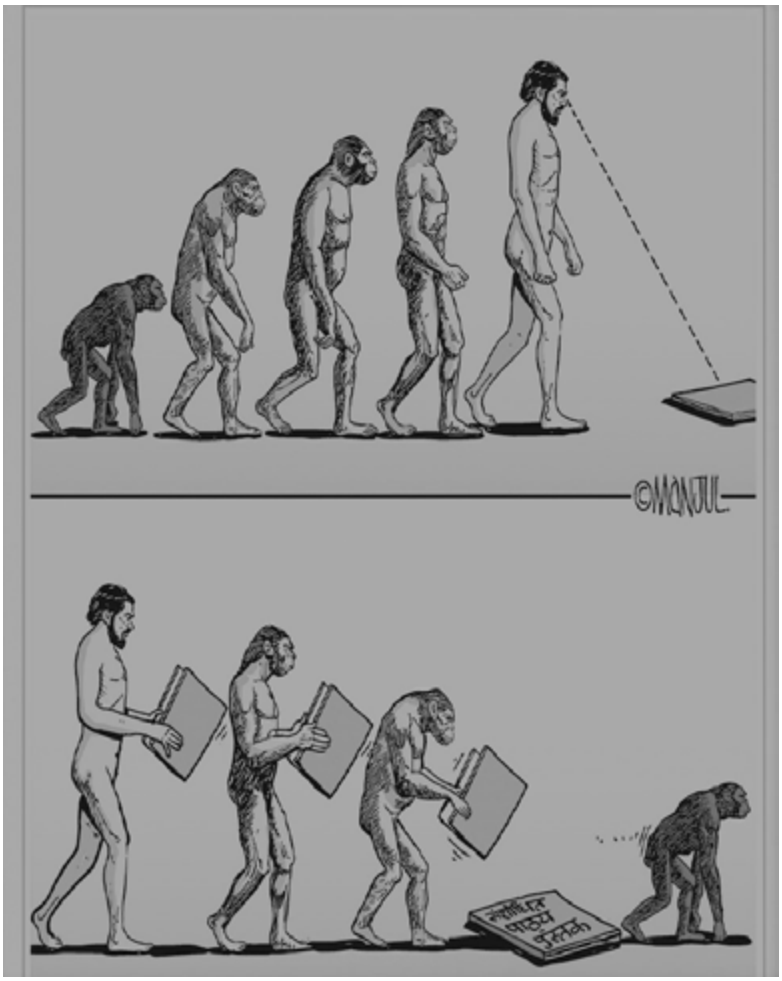

तीसरे तर्क के रूप में एनसीईआरटी ने छात्रों को अनुकूलित शिक्षण अनुभव प्रदान करने के लिए पाठ्यक्रम को अधिक "संक्षिप्त, सूचनात्मक और तर्कसंगत" बनाने के उद्देश्य से पुराने पाठ्यक्रम से विषय-सामग्री के कुछ हिस्सों को हटाने का तर्क दिया है। नयी शिक्षा नीति-2020 के तहत बच्चों को ज़्यादा उत्तरदायी और प्रासंगिक बनाने के लिए उनकी उम्र और रूचि के अनुसार इसमें बदलाव किये जा रहे हैं। पर हक़ीकत यह है कि यह छात्रों को प्रासंगिक नहीं अप्रासंगिक बनाना है। जब छात्र विज्ञान की बुनियादी बातों को ही नहीं जान पायेंगे तो वह तार्किक कैसे हो सकते हैं! नयी शिक्षा नीति के तहत शिक्षा को बरबाद करने और बेचने की तथा "गतिविधि आधारित शिक्षा" बोलकर बच्चों को मशीन बनाने की तैयारी तो सरकार पहले ही कर चुकी है।

इन अध्यायों को हटाये जाने के बाद देश भर में इसका विरोध किया जा रहा है। 4000 से अधिक शोधकर्ताओं और वैज्ञानिकों ने सरकार के इस निर्णय का विरोध किया है। कई छात्रों, शिक्षकों और छात्र संगठनों द्वारा भी इसका विरोध किया गया है। लेकिन हमेशा की तरह सरकार पर इसका कोई असर नहीं पड़ रहा। देश में तमाम शिक्षण संस्थानों का पहले ही भगवाकरण किया जा रहा है। क़िताबों से क्रान्तिकारियों की जीवनियों को हटाया जा रहा है। 2019 में ही एनसीईआरटी को संघ परिवार से जुड़े संगठन शिक्षा संस्कृति उत्थान न्यास ने ग़ालिब और टैगोर की रचनाओं, क्रान्तिकारी कवि पाश की कविता, एमएफ़ हुसैन की जीवनी के अंशों, गुजरात के दंगों, मुगल बादशाहों और नेशनल कान्फ्रेंस सम्बन्धी विवरण हटाने को कह दिया था। कर्नाटक की एक क़िताब में संघ के गुरु सावरकर को, जिसने अंग्रेज़ों को माफ़ीनामा लिखा था, एक 'स्वतन्त्रता सेनानी' बताया जा रहा है जो जेल से "बुलबुल" पर बैठ के फ़रार हुआ था। पर सच यह है कि उसकी "बुलबुल" अंग्रेज़ों को लिखा गया माफ़ीनामा ही था। राजस्थान में भाजपा सरकार के कार्यकाल में पाठ्यक्रम में श्यामा प्रसाद मुखर्जी, दीन दयाल उपाध्याय, के.एस. सुदर्शन आदि को शामिल

कर लिया गया। सिन्धिया को अंग्रेज़ों का मित्र बताने वाली झाँसी वाली रानी कविता को पाठ्यक्रम से बाहर कर दिया गया। मतलब संघ का झूठा इतिहास ही अब बच्चों के लिए इतिहास रह जायेगा। क्योंकि अपने सच्चे इतिहास से तो संघ परिवार ख़ुद डरता है, जिसमें अंग्रेज़ों की मुख़बिरी करना, हिटलर और मुसोलिनी की वकालत करने जैसी कई चीज़ें शामिल रही हैं। मोदी सरकार द्वारा लायी गयी नयी शिक्षा नीति शिक्षा के पूरे तन्त्र के फ़ासीवादीकरण का दस्तावेज़ है। आज सभी संस्थानों की फ़ीस बढ़ायी जा रही है तथा उनका निजीकरण किया जा रहा है। तमाम छात्रवृत्तियाँ एक-एक कर के बन्द की जा रहीं हैं। यह सारे क़दम इसलिए उठाये जा रहे हैं ताकि आम घरों के बच्चों का पढ़ना मुश्किल हो सके। ऐसे अन्धभक्तों की फ़ौज तैयार हो सके जो बिना सोचे-समझे आँख बन्द कर के सरकार द्वारा फैलाये जा रहे हर उस बात का विश्वास कर सकें जो यह सरकार बोले। ख़ैर, मूर्खों से क्या ही उम्मीद की जा सकती है? जिनका सबसे बड़ा नेता 'प्लास्टिक सर्जरी', 'पुष्पक विमान' और न जाने ऐसी कई चीज़ों पर बेतुके बयान देता हो। संघियों के इतिहास और विज्ञान के ज्ञान की पोल पट्टी तो वैसे ही खुल जाती है।

पर एक फ़ासीवादी सत्ता ऐसे ही काम करती है। वह पहले पूरे इतिहास का मिथ्याकरण करती है, फ़िर अपनी पूरी शक्ति से उसे स्थापित करने की कोशिश में लग जाती है। एक झूठे इतिहास का महिमामण्डन कर के लोगों को किसी "रामराज्य" के ख़्वाब दिखाती है, जिसका सच्चाई से दूर-दूर तक कोई रिश्ता नहीं है। पहले टीवी न्यूज़ चैनलों और फेसबुक, इंस्टाग्राम, ट्विटर तथा व्हाट्सऐप जैसे सोशल मीडिया के ज़रिये ऐसे झूठ को हज़ार बार दोहराया जाता है, जिससे वह एक सामान्य बोध की तरह लोगों के दिमाग़ में स्थापित हो जाये और लोग उसे सच मानने लगें। आज भाजपा और आरएसएस द्वारा लगातार यही कोशिशें की जा रही हैं। आरएसएस द्वारा संचालित सरस्वती शिशु मन्दिर, विश्व हिन्दू परिषद् द्वारा संचालित एकल अभियान जैसी संस्थाएँ पहले ही बचपन से बच्चों के दिमाग़ में ज़हर घोलने का काम कर रही हैं। लेकिन अब सत्ता में आने के बाद इन्होंने इसी काम को हर स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालयों तक ले जाने की कवायद शुरू कर दी है। इनके ज़रिये फ़ासिस्ट समस्याओं और उनके वास्तविक कारणों पर परदा डालने का काम करते हैं। ऐसी विषय सामग्री को पाठ्यक्रम में जगह देने की वजह नयी पीढ़ी के दिमाग़ में वर्तमान व्यवस्था को 'श्रेष्ठतम सम्भव व्यवस्था' साबित करने की साफ़-साफ़ कोशिश-भर है। इसके अलावा पाठ्यक्रम में ऐसे विषय-वस्तुओं की भरमार है, जो असल समस्याओं और मुद्दों पर ध्यान केन्द्रित करने की जगह अनावश्यक चीज़ों की ओर ध्यान भटकाते हैं। कुल मिलाकर यदि बच्चों को केवल स्कूली शिक्षा के भरोसे छोड़ दिया जाए तो उनके कूपमण्डूक होने की शत-प्रतिशत सम्भावना है। इन बदलावों के बाद तो वे अपने सोचने-विचारने की शक्ति से भी हाथ धो बैठेंगे। लेकिन यह भी इतना ही सच है कि वही इतिहास और विज्ञान हमें आगे का और इन फ़ासिस्टों से लड़ने का रास्ता भी सुझाता है। ऐसी तमाम कोशिशें इतिहास में पहले भी हो चुकीं हैं। अत: आज ऐसे लोगों की ज़रूरत है जो बच्चों के कोमल मन को प्रदूषित होने से बचाने में अपनी भूमिका निभा सकें, व्यवस्था के सारे फ़र्ज़ीवाड़े को उनके सामने उजागर कर सकें और उनमें सुन्दर भविष्य के सपने देखने और प्रयास करने की आदत डाल सकें। •

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

(15 सितम्बर 1927 - 23 सितम्बर 1983)

जड़ें कितनी गहरी हैं
आँकोगी कैसे?
फूल से?
फल से?
छाया से?
उसका पता तो इसी से चलेगा
आकाश की कितनी
ऊँचाई हमने नापी है,
धरती पर कितनी दूर तक बाँहे पसारी हैं।
जलहीन, सूखी, पथरीली
ज़मीन पर खड़ा रहकर भी
जो हरा है
उसी की जड़ें गहरी हैं
वही सर्वाधिक प्यार से भरा है।

- सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

सामयिकी

मिथक को यथार्थ बनाने के संघ के प्रयोग

भारत

'आदिपुरुष' फ़िल्म के रिलीज़ होने के बाद से लगातार इस फ़िल्म की आलोचना हो रही है कि राम कथा को "गेम्स ऑफ़ थ्रोंस" टाइप बना कर रख दिया। डायलॉग जो मनोज मुन्तशिर द्वारा लिखे गये हैं, उसपर भी फ़िल्म की थू-थू हो रही है। सब कह रहे हैं कि इससे अच्छी तो रामानन्द सागर कृत रामायण थी, जिसने बिल्कुल ऐतिहासिकता के साथ रामायण को दिखाया। इस मसले पर सारे संघी और लिबरल एकजुट हैं और एकसाथ 'आदिपुरुष' का विरोध कर रहे हैं और पुरानी रामायण का गुणगान कर रहे हैं। थोड़ा बहुत रेडिकल तेवर दिखाते हुए कुछ लिबरल यह कह रहे हैं कि अब क्यों नहीं इस फ़िल्म का बॉयकॉट किया जा रहा! इस फ़िल्म के बॉयकॉट न होने के पीछे असल कारण है मनोज मुन्तशिर का भाजपा और संघ से अच्छे सम्बन्ध होना। फ़िल्म रिलीज़ होने से पहले भाजपा के कई मुख्यमन्त्रियों ने फ़िल्म को शुभकामनाएँ दी थी। इसलिए अभी सारे अण्डभक्त कन्फ्यूज हैं कि इस फ़िल्म से भावनाओं को आहत करें या न करें!

पर वहीं दूसरी तरफ़ सब इस बात पर एकमत हैं कि रामायण भारत का इतिहास है, जिसे रामानन्द ने अच्छे से फ़िल्माया। रामानन्द सागर द्वारा निर्मित रामायण भी वाल्मीकी रामायण का एक भोंड़ा संस्करण है। पर यही संघ का प्रोपोगैण्डा काम कर रहा है। यानी मिथक को इतिहास बनाकर पेश करना। वाल्मीकि रामायण मिथकों पर आधारित महाकाव्य है, वाल्मीकि द्वारा जो रामकथा प्रस्तुत की गयी है, उसके लिए कोई ऐतिहासिक आधार उपलब्ध नहीं है। पर जैसा कि हर दौर का साहित्य, उस दौर के समाज के बारे में बताता है, उसी प्रकार रामायण से उस दौर के समाज के बारे में एक हद तक जान सकते हैं। पर इसका अर्थ यह नहीं निकलता कि रामायण भारत का इतिहास है।

आइये, अब संक्षेप में जानते हैं कि कैसे रामायण इतिहास नहीं है! वाल्मीकि का समय हमें ज्ञात नहीं है, पर यह कहा जा सकता है कि आज से क़रीब डेढ़ हज़ार वर्ष पूर्व (लगभग 300-500 ई॰) के अन्त समय में उनकी रामायण का स्वरूप रहा होगा। गुप्त काल से पहले वाल्मीकि रामायण का स्वरूप कैसा रहा होगा, यह जानने के लिए फ़िलहाल कोई ठोस साधन नहीं हैं। रामायण की जितनी भी हस्तलिपियाँ मिली हैं, एक हज़ार साल से अधिक पुरानी नहीं हैं। रामायण की सबसे पुरानी हस्तलिपि 1020 ई. की है, जो नेपाल से प्राप्त हुई। रामायण में समय समय पर नयी-नयी बातें जोड़ी जाती रही हैं, इसलिए उपलब्ध हस्तलिपियों में ढेर सारे पाठान्तर देखने को मिलते हैं। वाल्मीकि ने मूल कथा में बहुत सारी काल्पनिक घटनाओं, मिथकों और कल्पित पात्रों का समावेश कर अपने महाकाव्य की रचना की। बाद में कथाकारों, कीर्तनकारों, चारणों, भाटों और पौराणिकों ने वाल्मीकि की उस रामकथा में अनेकों बातें जोड़ीं। रामानन्द कृत रामायण भी वाल्मीकि रामायण का अनूदित, परिवर्द्धित और संशोधित संस्करण है। गुप्तकाल में वाल्मीकि रामायण का जो स्वरूप बना, उसके आधार पर बाद में कई कृतियों की रचना हुई। कालिदास ने रघुवंशम् काव्य की रचना की। उसके क़रीब तीन-चार सदियों बाद भवभूति ने उत्तररामचरित की रचना की। उत्तर भारत में तुलसीदास के रामचरित को और दक्षिण भारत के कम्बन की रामकथा को सबसे ज़्यादा प्रसिद्धि मिली। 2008 में दिल्ली विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में शामिल किये गये रामानुजन के निबन्ध '300 रामायणाज़' को लेकर संघियों ने बवाल किया था। रामानुजन ने इस निबन्ध में साक्ष्यों के ज़रिये दिखाया था कि भारत में रामायण के लगभग 300 संस्करण प्रचलित हैं।

राम के बारे में कहा जाता है कि वे कृष्ण से पहले त्रेता युग में हुए। सम्भव है कि अयोध्या या कोसल के इक्ष्वाकु कुल में दशरथ पुत्र राम कोई ऐतिहासिक पुरुष सचमुच हुए हों, परन्तु वाल्मीकि ने अपने काव्य में जो रामकथा प्रस्तुत की है, उसके लिए फ़िलहाल गुप्तकाल से पहले का कोई ऐतिहासिक या पुरातात्विक साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। साथ ही समूचे वैदिक वाङ्गमय में एक देवता के रूप में राम का कोई स्पष्ट नामोल्लेख नहीं है। उपनिषदों में विदेहराज जनक की पर्याप्त चर्चा है, पर दशरथ के नाम का उल्लेख नहीं मिलता। पाणिनी और महाभाष्यकार पतंजलि ने महाभारत के अनेकों पात्रों के उदाहरण दिये हैं, पर इन वैयाकरणों ने राम का कहीं कोई उल्लेख नहीं किया। गुप्तकाल से पहले का राम का कोई मन्दिर या मूर्तिशिल्प नहीं मिलता। तमाम तथ्यों और तर्कों से यह बात सिद्ध की जा सकती है कि राम ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं है, रावण की लंका और सागर पर सेतु बाँधना भी कवि की कपोल कल्पना है।

हर सभ्यता के अपने महाकाव्य रहे हैं और उनके महानायक रहे हैं, चाहे वो यूनानी सभ्यता प्रमुख देवता जिएस थे जिसे आकाश देवता कहा जाता था, हरक्यूलिस को ग्रीक मिथक में महानायक माना गया है। पर जैसे-जैसे उत्पादन प्रणाली और

उत्पादन सम्बन्ध विकसित होते गये महानायक महाकाव्यों तक सीमित होते गये। इसी तरह महाभारत, रामायण भी हमारे देश के महान महाकाव्य हैं, पर आज उन्हें क्यों इतिहास की तरह पेश किया जा रहा है, इसके पीछे का मक़सद क्या है? आइए जानते हैं!

इतिहास का निर्माण जनता करती है। फ़ासिस्ट ताक़तें जनता की इतिहास-निर्मात्री शक्ति से डरती हैं। इसलिए वे न केवल इतिहास के निर्माण में जनता की भूमिका को छिपा देना चाहती हैं, बल्कि इतिहास का ऐसा विकृतिकरण करने की कोशिश करती हैं जिससे वह अपनी विचारधारा और राजनीति को सही ठहरा सकें। संघ परिवार हमेशा से ही इतिहास का ऐसा ही एक फ़ासीवादी कुपाठ प्रस्तुत करता रहा है। 6 दिसम्बर 1992 को बाबरी मस्जिद के विध्वंस की घटना इस फ़ासीवादी मुहिम की एक प्रतीक घटना है। लम्बे समय तक जनता के बीच में यह मिथ्या प्रचार करके कि बाबरी मस्जिद को एक प्राचीन मन्दिर को तोड़कर बनाया गया है और यह उसी जगह पर बनी है जहाँ पर राम का जन्म हुआ था, फ़ासिस्टों ने देशव्यापी आन्दोलन खड़ा किया। पूरे देश में बड़े पैमाने पर दंगे हुए और लोगों की लाशों को रौंदता हुआ फ़ासिस्टों का रथ अपनी मंज़िल तक तब पहुँचा जब कोर्ट ने तमाम पुरातात्विक साक्ष्यों और तथ्यों को दरकिनार करते हुए इस आधार पर फ़ासिस्टों के पक्ष में फ़ैसला दिया कि बहुसंख्यक हिन्दू यह मानते हैं कि उक्त स्थान पर राम का जन्म हुआ था। संचार-क्रान्ति के इस दौर में पूँजी का वरदहस्त पाकर संघी फ़ासीवादियों ने इतिहास के विकृतिकरण की अपनी मुहिम को नया आयाम दिया है। फ़िल्मों, टीवी चैनलों से लेकर फ़ेसबुक, व्हाट्सएप और ट्विटर जैसे सोशल मीडिया के हर पहलू पर आज फ़ासिस्टों का बोलबाला है। आरएसएस से जुड़े फ़िल्मकार अपनी फ़िल्मों में इतिहास के सही तथ्यों को उलटकर पेश कर रहे हैं। जानबूझकर इतिहास में छेड़खानी करते हुए फ़िल्मों में मुसलमानों को दुश्मन के रूप में पेश करने, टीवी चैनलों पर इतिहास के फ़ासीवादी संस्करण पर आधारित सीरियल दिखाये जाने जैसी बातें आम हो चुकी हैं। दिन-रात विषवमन करते हज़ारों यूट्यूब चैनल दिन-रात युवाओं की बहुत बड़ी आबादी के दिमाग़ में ज़हर घोल रहे हैं। भारत के फ़ासीवादी विगत एक शताब्दी में एक लम्बी प्रक्रिया में देश की हिन्दू आबादी के बड़े हिस्से में मिथकों को कॉमन सेंस ('सामान्य बोध') के रूप में स्थापित करने के लिए लगातार प्रयासरत रहे हैं और काफ़ी हद तक इसमें सफलता भी प्राप्त की है। कल्पित अतीत के गौरव की वापसी का एक धार्मिक-भावनात्मक प्रतिक्रियावादी स्वप्न "रामराज्य" की स्थापना और भारत को विश्वगुरु बनाने जैसे नारों के रूप में संघी फ़ासिस्टों ने देश की हिन्दू आबादी के बड़े हिस्से में भरा है। भारतीय समाज के ताने-बाने में तर्कणा, वैज्ञानिक चिन्तन और जनवाद का अभाव आरएसएस के फ़ासीवादी एजेण्डे के लिए उर्वर ज़मीन का काम करता है।

हमारे देश में पूँजीवादी लोकतन्त्र पुनर्जागरण-प्रबोधन-क्रान्ति की एक लम्बी ऐतिहासिक प्रक्रिया के नतीजे के तौर पर नहीं स्थापित हुआ। आज़ादी के बाद भारत में नेहरू के नेतृत्व में क्रमिक पूँजीवादी विकास (प्रशियाई पाथ) का रास्ता चुना गया। पूँजीवादी विकास अपनी स्वाभाविक गति से ग्रामीण और शहरी निम्न पूँजीपति वर्ग और मध्यवर्ग की एक आबादी को उजाड़कर असुरक्षा और अनिश्चितता की तरफ़ धकेलता रहता है। असुरक्षा और अनिश्चितता की यह स्थिति इस टुटपूँजिया वर्ग में प्रतिक्रियावाद की ज़मीन तैयार करती है। यह प्रतिक्रियावादी ज़मीन और जनमानस में जनवाद, तर्कणा और वैज्ञानिक चिन्तन की कमी टुटपुँजिया वर्ग को फ़ासीवादी प्रचार का आसान शिकार बना देती है। फ़ासीवाद उजड़ते और उभरते हुए टुटपुँजिया वर्ग का प्रतिक्रियावादी सामाजिक आन्दोलन है। यह इस टुटपुँजिया वर्ग को एक तरफ़ तो नस्लीय, जातीय, धार्मिक आधार पर एक नक़ली दुश्मन प्रदान करता है। दूसरी तरफ़ वह इसके सामने एक गौरवशाली अतीत का मिथक रचता है। भारतीय फ़ासीवादी इसी तरह लम्बे समय से देश की हिन्दू आबादी को अतीत का वह स्वप्न दिखाते रहे हैं जब इस महान जम्बूद्वीप भारतखण्ड पर स्वर्ण युग था, जिसे मुगलों तथा यवनों ने छीन लिया। आरएसएस के इस कल्पित स्वर्ण युग में वे सभी वैज्ञानिक-तकनीकी उपलब्धियाँ जो मानवता ने आज हासिल की है, वास्तव में पहले ही हासिल की जा चुकी थीं! औपनिवेशिक सामाजिक संरचना की कोख से जन्मे और समझौता-दबाव-समझौता की रणनीति के तहत सत्ता हासिल करने वाले भारतीय मध्यवर्ग के पास यूरोपीय मध्यवर्ग की तरह पुनर्जागरण-प्रबोधन-क्रान्ति की तार्किकता और वैज्ञानिकता तथा मानवतावाद और जनवाद की कोई विरासत नहीं है। यह न तो आजीवक और लोकायत से परिचित है, न ही सांख्य, न्याय, वैशेषिक दर्शनों अथवा चरक और सुश्रुत की विरासत से। यहाँ तक कि निकट अतीत के कबीर, नानक, रैदास तथा राहुल सांकृत्यायन, राधामोहन गोकुल, गणेश शंकर विद्यार्थी की रचनाओं से भी इसका परिचय नहीं है और न ही इसने क्रान्तिकारी आन्दोलन की वैचारिक विरासत का ठीक से अध्ययन किया है। पिछले सौ सालों में समाज के ताने-बाने में अपनी पैठ के ज़रिए और अनगिनत प्रयोगों, मिथ्याप्रचारों और आन्दोलनों के ज़रिए फ़ासिस्टों ने अपने फ़ासीवादी प्रचार की ज़द में एक बहुत बड़ी आबादी को ले लिया है।

फ़ासिस्ट सर्वहारा वर्ग के सबसे बड़े दुश्मन हैं और यही वजह है कि वे सर्वहारा क्रान्तियों के ख़िलाफ़ कुत्सा-प्रचार करने और उसकी उपलब्धियों पर कीचड़ उछालने का काम करते हैं। एक सर्वहारा वर्गीय दृष्टिकोण से नये सिरे से पुनर्जागरण और प्रबोधन की मुहिम को ज़मीन पर उतारना आज के समय में फ़ासीवाद के ख़िलाफ़ संघर्ष का एक अहम मोर्चा है। •

सामयिकी

साक्षी की हत्या को 'लव जिहाद' बनाने की संघ की कोशिश को किया गया असफल

भारत

बीती 28 मई की रात को शाहाबाद-डेरी के बी-ब्लॉक में 16 वर्षीय साक्षी नाम की एक नाबालिग़ लड़की की चाकू से गोद कर और उसके बाद पत्थर से कुचल कर आरोपी साहिल द्वारा हत्या कर दी गयी। पूरे मामले की जानकारी सीसीटीवी फुटेज से हुई। लड़की इलाक़े के ई-ब्लॉक में रहती थी। गत रात साक्षी अपनी एक दोस्त के बेटे के जन्मदिन पार्टी में शिरकत करने जा रही थी। आरोपी साहिल युवती का कई महीनों से पीछा कर रहा था। उस रात दोनों के बीच झगड़ा हुआ जिसके फलस्वरूप साहिल ने साक्षी की जान ले ली।

शाहाबाद डेरी में यह घटना अनायास ही नहीं हो गयी। पूरे इलाक़े में नशाखोरी-छेड़खानी बड़े पैमाने पर फैली हुई है। हर नुक्कड़ चौराहे पर लम्पट तत्व महिलाओं को छेड़ते हैं। साहिल भी उनमें से एक था। बहुत से लम्पट तो भाजपा-आम आदमी पार्टी से भी जुड़े होते हैं। इन पार्टियों के तमाम नेता इन गुण्डों को शह देते हैं ताकि चुनाव के समय इनका इस्तेमाल कर सकें। इस इलाक़े में इस तरह की यह कोई पहली घटना नहीं है। इससे पहले भी कई बार बच्चियों व स्त्रियों से बलात्कार के मामले सामने आ चुके हैं। कुछ वर्ष पहले पाँच साल की बच्ची मुस्कान के साथ भी बलात्कार और हत्या की घटना सामने आयी थी। इलाक़े के लोगों के एकजुट होने के बाद ही इस पर कार्रवाई हुई। अन्यथा पुलिस प्रशासन कान में तेल डाल कर सोया था। इसके बाद भी इलाक़े में छेड़खानी और स्त्री-उत्पीड़न की घटनाएँ सामने आती रहीं, पर भाजपा और आम आदमी पार्टी के नेता आँख बन्द करके बैठे रहे। इस इलाक़े में सुरक्षा व्यवस्था की हालत खस्ता है। यहाँ पिछले छः महीने में बर्बर हत्या की चार घटनाएँ सामने आ चुकी हैं। इससे पहले दो युवकों के शव इलाक़े के नाले से बरामद हुए थे, एक युवक का शव सड़क के किनारे मिला था और एक युवक का शव पास के गाँव मे मिला था।

आज समझने की ज़रूरत है कि देश भर में लगातार स्त्री-विरोधी अपराध बढ़ क्यों रहे हैं? आज स्त्रियों पर हमला करने वाले आदम-ख़ोर भेड़िये बेख़ौफ़ घूमते रहते हैं। हिफ़ाज़त के लिए बनी संस्थाएँ ही स्त्रियों की सबसे बड़ी दुश्मन बन चुकी हैं। ऐसी हर घटना के बाद सरकार से लेकर सभी विपक्षी चुनावी पार्टियाँ जमकर घड़ियाली आँसू बहाती हैं। लेकिन यही पार्टियाँ हैं जो लोकसभा और विधानसभा चुनावों में स्त्री-विरोधी अपराधों के सैकड़ों आरोपियों को टिकट देती हैं। हर चुनावी पार्टी में बलात्कार, भ्रष्टाचार, हत्या आदि के आरोपी भरे हुए हैं। लेकिन ऐसे अपराधियों का बेशर्मी से बचाव करने में भाजपा और संघ परिवार ने सबको पीछे छोड़ दिया है। पिछले तीन दशकों से जारी आर्थिक नीतियों ने 'खाओ-पियो, ऐश-करो' की संस्कृति में लिप्त एक नवधनाढ्य वर्ग पैदा किया है जिसे लगता है कि पैसे के बूते पर वह सबकुछ ख़रीद सकता है। पूँजीवादी लोभ-लालच और हिंस्र भोगवाद की संस्कृति ने स्त्रियों को एक 'माल' बना डाला है, और पैसे के नशे में अन्धे इस वर्ग के भीतर उसी 'माल' के उपभोग की उन्मादी हवस भर दी है। इन्हीं लुटेरी नीतियों ने एक आवारा, लम्पट, पतित वर्ग भी पैदा किया है जो पूँजीवादी अमानवीकरण की सभी हदों को पार कर चुका है। आज हर नुक्कड़-गली-चौराहे पर शोहदे महिलाओं को छेड़ते हैं और इनकी ऐसी मानसिकता इस व्यवस्था द्वारा बनायी जाती है। बार-बार स्त्रियों के साथ होने वाली नृशंसता इसकी गवाही देती है। हमारे समाज के पोर-पोर में समायी पितृसत्तात्मक मानसिकता इस सबको निरन्तर खाद-पानी देती है, जो स्त्रियों को भोग की वस्तु और बच्चा पैदा करने का यन्त्र भर मानती है, और हर वक़्त, हर पल स्त्री-विरोधी मानसिकता को जन्म देती है। समाज में अपनी स्वतन्त्र पहचान बनाने के लिए आगे बढ़ी स्त्रियाँ ऐसे लोगों की आँखों में खटकती है और वे उन्हें "सबक़ सिखाने" में जुट जाते हैं। आज पूँजीवादी व्यवस्था में स्त्रियों को उपभोग की सामग्री के तौर पर पेश किया जा रहा है और स्त्री-विरोधी मानसिकता को बल प्रदान किया जा रहा है।

वहीं मोदी सरकार के आने के बाद से स्त्री-विरोधी घटनाएँ अपने चरम पर है। आज भारत महिलाओं के लिये सबसे असुरक्षित देश बन चुका है। हर एक घण्टे में 3 महिलाओं के साथ बलात्कार होता है। तमाम केन्द्र शासित प्रदेशों में सबसे अधिक महिलाओं के ख़िलाफ़ अपराध दिल्ली में दर्ज़ हुए हैं। दिल्ली पुलिस द्वारा जारी आँकड़ों के आधार पर 'द हिन्दू' में छपी एक रिपोर्ट के मुताबिक़ देश की राजधानी दिल्ली में 2021 के पहले छः महीने में महिलाओं के ख़िलाफ़ होने वाले अपराध में 63.3% की बढ़ोत्तरी हुई है। वहीं देश भर में स्त्री-विरोधी अपराधों की जैसे बाढ़ आ गयी है। 'राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो' की एक रिपोर्ट के अनुसार 2019 में महिलाओं के ख़िलाफ़ होने वाले अपराधों में 7% की वृद्धि हुई है। 2018 में 3,78,236 महिला-

विरोधी आपराधिक मामले दर्ज़ किये गये। नवम्बर 2017 में आयी 'राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो' की रिपोर्ट के मुताबिक़ साल 2016 में कुल 3,38,954 स्त्री-विरोधी आपराधिक मामले दर्ज़ हुए हैं। 2016 में अकेले बलात्कार के 38,947 मामले दर्ज़ हुए थे! 18 जुलाई, 2018 को किरण रिजिजु के संसदीय बयान के अनुसार 2014 से 2016 के बीच बलात्कार के 1,10,333 केस सामने आये हैं। एनसीआरबी की रिपोर्ट के अनुसार 2007 से 2016 तक स्त्री-विरोधी अपराधों में 83 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई है। ये वो आँकड़े हैं जिनकी शिकायत दर्ज़ हो पाती है, जबकि सच्चाई इससे कहीं अधिक भयावह है क्योंकि बहुतेरे मामलों में तो शिकायत भी नहीं दर्ज़ हो पाती है।

आज सत्ता में वे ही लोग हैं जिन्होंने कुलदीप सिंह सेंगर से लेकर चिन्मयानन्द जैसे बलात्कारियों-अपराधियों को बचाने में दिन-रात एक कर दिये थे। जम्मू में एक 8 वर्षीय बच्ची के बलात्कारियों और हत्यारों के समर्थन में इन्होंने रैलियाँ तक आयोजित की थीं। यह भी भूलना नहीं चाहिए कि 2002 में गुजरात में सैकड़ों मुस्लिम स्त्रियों के साथ सामूहिक बलात्कार के बाद उनकी हत्या करने वाले लोग यही थे। हाथरस में बलात्कार और हत्या की शिकार लड़की के अपराधियों को बचाने के लिए योगी सरकार ने आधी रात को जबरन उसकी लाश जलवा दी थी। इनके नारी सशक्तीकरण और बेटी-बचाओ के नारों के ढोल की पोल इस बात से खुल जाती है कि आज भारत महिलाओं के लिए सबसे असुरक्षित देशों की सूची में सबसे ऊपर पहुँच चुका है। जिन लोगों की विचारधारा में बलात्कार को विरोधियों पर विजय पाने के हथियार के रूप में इस्तेमाल किया जाता हो, जिस पार्टी का इतिहास ही बलात्कारियों को संरक्षण देने का रहा हो क्या उनसे हम स्त्रियों के लिए न्याय, सम्मान, सुरक्षा और आज़ादी की उम्मीद कर सकते हैं? जब सत्ता में ही ऐसे फ़ासिस्ट विराजमान होंगे तो समाज में भी इनके द्वारा पोषित पितृसत्तात्मक पाशविकता और घोर स्त्री-विरोधी मानसिकता को बल मिलेगा। ज्ञात हो कि भाजपा के 40 प्रतिशत से अधिक सांसदों, विधायकों के ऊपर बलात्कार, हत्या के गम्भीर मामले दर्ज़ हैं। भाजपा ऐसे अपराध करने वालों के लिये सबसे भरोसेमन्द पार्टी है, इसी कारण आज भाजपा में अच्छी-ख़ासी संख्या में स्त्री-विरोधी अपराधी भरे पड़े हैं। महिला पहलवानों का संघर्ष भी भाजपा सांसद बृजभूषण के ख़िलाफ़ ही है। आज बलात्कारी भाजपा में शामिल होकर "संस्कारी" बन जाता है!

इस मसले को भाजपा सरकार व संघ 'लव-जिहाद' का नाम देने में लगी हुई है। स्त्री-विरोधी अपराधों पर लगाम लगाने के बजाय भाजपा सरकार और गोदी मीडिया एड़ी-चोटी तक का ज़ोर लगा कर इस मसले को धार्मिक रंग देने की कोशिश कर रही थी। कपिल मिश्रा ने बयान दिया कि हिन्दू लड़की के साथ यह घटना घटी है। भाजपा-संघ और गोदी मीडिया द्वारा प्रचार किया जा रहा था कि साहिल एक मुसलमान है, इसलिए उसने साक्षी की हत्या की। इस प्रचार के पीछे इनका मक़सद इलाक़े में साम्प्रदायिक तनाव भड़काना और हिन्दू-मुस्लिम के बीच झगड़े करवाना था। जैसा कि इन्होंने उत्तराखण्ड के पुरोला में किया व हिमाचल प्रदेश व देश के अन्य इलाक़ों में करने की कोशिश कर रहे हैं। 'लव जिहाद' के हल्ले का एक मक़सद यह भी है कि हिन्दुओं में बेबुनियाद भय पैदा किया जाये कि "मुसलमान आपकी औरतों को ले जायेंगे या मार देंगे!" अब ज़रा सोचिये कि भाजपा के तमाम शीर्ष नेताओं या उनके बेटे-बेटियों, भतीजा-भतीजियों ने मुसलमान पुरुष या स्त्री से शादियाँ की हैं, तो फिर ये हमें 'लव जिहाद' के नाम पर क्यों लड़वा रहे हैं? आइये कुछ तथ्यों पर निगाह डालते हैं।

भाजपा के मुसलमान नेता शाहनवाज़ हुसैन की शादी एक हिन्दू स्त्री रेणु शर्मा से 1994 में हुई थी। इनके बीच प्रेम विवाह हुआ था। भाजपा के मुसलमान नेता मुख़्तार अब्बास नक़वी ने भी एक हिन्दू औरत सीमा से 1983 में शादी की थी। यह भी प्रेम विवाह था। भाजपा के मुखर नेता सुब्रमण्यम स्वामी की हिन्दू बेटी सुहासिनी ने नदीम हैदर से शादी की। क्या यह 'लव जिहाद' की परिभाषा में नहीं आयेगा? आज हमें समझने की ज़रूरत है कि स्त्री-विरोधी घटनाएँ धर्म को देख कर नहीं होती बल्कि आज हर धर्म की महिलाएँ इसका शिकार हैं। वास्तव में, 'लव जिहाद' कोई मसला है ही नहीं। 'लव जिहाद' तो बहाना है, जनता ही निशाना है। मोदी सरकार जनता को रोज़गार नहीं दे सकती, महँगाई से छुटकारा नहीं दिला सकती, खुले तौर पर अडानी-अम्बानी के तलवे चाटने में लगी है और सिर से पाँव तक भ्रष्टाचार में लिप्त है, तो वह उन असली मसलों पर बात कर ही नहीं सकती, जो आपकी और हमारी ज़िन्दगी को प्रभावित करते हैं। शाहाबाद डेरी में संघ के 'लव जिहाद' के प्रयोग को असफल कर दिया गया। पहले तो इलाक़े में भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी के कार्यकर्ताओं के नेतृत्व में लोगों ने एकजुट होकर संघियों को इलाक़े से खदेड़ा। इसके बाद इलाक़े में संघियों को चेतावनी देते हुए और हत्यारे साहिल को कठोर सज़ा देने की माँग करते हुए रैली निकाली गयी। इलाक़े से खदेड़े जाने के बाद से और 'लव जिहाद' का मसला न बन पाने के कारण संघी बौखलाये हुए थे। संघ के अनुषांगिक संगठनों द्वारा इलाक़े का माहौल ख़राब करने के मक़सद से सभा भी बुलायी गयी और मुस्लिमों के ख़िलाफ़ खुलकर ज़हर उगला गया, पर इनकी यह कोशिश भी नाकाम रही। इनकी सभा के बरक्स ही भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी की सभा भी जारी रही। और महिला सुरक्षा के मद्देनज़र दुर्गा भाभी स्क्वॉड की भी स्थापना की गयी जिसके तहत महिलाओं व लड़कियों को मार्शल आर्ट और आत्मरक्षा की ट्रेनिंग देना शुरु किया गया, ताकि आगे से लम्पटों-शोहदों को जवाब दिया जा सके और स्त्री-विरोधी अपराधों पर रोक लगायी जा सके। पूरा घटनाक्रम यह दिखलाता है कि लोग एकजुट हों तो इन दंगाइयों को रोका जा सकता है। साथ ही बढ़ते स्त्री-विरोधी अपराधों पर भी लगाम लगायी जा सकती है।

•

सामयिकी

अमृतकाल में बढ़ते स्त्री-विरोधी अपराध

शिवा

2014 के बाद से देश में 'बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ' का ख़ूब शोर मचाया गया, लेकिन पिछले 8-9 सालों में बेटियों की दर्दनाक चीख़ों में यह झूठा शोर डूब गया है। बीते कुछ सालों में देश में नाबालिग़ बच्चियों के साथ बर्बर बलात्कार की कई ऐसी घटनाएँ घटी हैं जो किसी भी संवेदनशील इंसान की रूह कँपा देंगी। इन घटनाओं ने आम जनता के सामने कुछ बातों को एक़दम स्पष्ट किया है। पहली बात तो यह कि भाजपा कितना भी स्त्री हितैषी होने का दावा करे, बीते कुछ सालों में जिस बेशर्मी से इसने बलात्कारियों को सुरक्षा और राजनीतिक संरक्षण देने का काम किया है वह अभूतपूर्व है। दूसरा देश में पुलिस प्रशासन से लेकर क़ानून व्यवस्था का चरित्र भी स्त्री-विरोधी पितृसत्तात्मक मानसिकता से ग्रस्त है।

देश में कोई दिन ऐसा नहीं बीतता जब देश के किसी न किसी कोने से मासूम बच्चियों की चीख़ें न सुनायी देती हों। अभी ज़्यादा दिन नहीं हुए उत्तर प्रदेश (जिसको भयमुक्त प्रदेश बताया जा रहा है) के बस्ती जिले में 14 साल की नाबालिग़ लड़की के साथ बलात्कार किया गया जिससे उसकी मौत हो गयी। उसके बाद बर्बरता की इन्तहाँ यह थी कि ख़ून से लथपथ लाश को पचास मीटर घसीटते हुए सड़क किनारे फेंक दिया। इस बर्बरता का मुख्य आरोपी कुन्दन सिंह भाजपा किसान मोर्चा बस्ती गौर मण्डल का उपाध्यक्ष है, बाकी राज साहनी और मोनू साहनी भाजपा के कार्यकर्ता और उसके दोस्त हैं। इन अपराधियों और बलात्कारियों की पहुँच ऊपर तक होने के कारण शुरु से ही पुलिस कार्रवाई करने की जगह लीपापोती करने में जुट गयी। इण्डियन एक्सप्रेस में लड़की के पिता का बयान छपा था कि पुलिस भाजपा के लोगों के ख़िलाफ़ कार्रवाई करने से बच रही है। जन दबाव की वजह से कार्रवाई हुई और अपराधियों को गिरफ़्तार किया गया। क़रीब दस दिन बाद जब नये विवेचक रामेश्वर यादव मामले की छानबीन करते हुए कुन्दन सिंह के मकान का निरीक्षण करने पहुँचे तो कुन्दन सिंह के अवैध शराब के व्यापार का भी खुलासा हुआ। मकान से अवैध शराब की कई खेप बरामद हुई। इस पूरे कारोबार में स्थानीय पुलिस प्रशासन को भी संलिप्त पाया गया और उस मकान का काफ़ी हिस्सा अवैध निर्माण होने का भी मामला सामने आया।

इस घटना के क़रीब एक महीने बाद ही 15 जुलाई को राजस्थान के जोधपुर शहर स्थित जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय परिसर में 17 वर्षीय दलित लड़की के साथ भाजपा की छात्र शाखा 'अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद' के सदस्यों ने बलात्कार किया। इसी तरह से मध्य प्रदेश में भी दो बहनों का सामूहिक बलात्कार किया गया जिनमें से एक लड़की की उम्र 17 साल और दूसरी की 19 साल है। पुलिस ने जिन चार अपराधियों को गिरफ़्तार किया है उनमें से एक स्थानीय भाजपा नेता का बेटा भी है। फिर 26 अगस्त को ही राजस्थान के पाली में भाजपा नेता मोहनलाल जाट और उसके चार साथियों पर एक महिला ने बलात्कार और उसकी नाबालिग़ बेटी से छेड़छाड़ का मामला दर्ज़ कराया। इसी तरह 31 अगस्त को छत्तीसगढ़ के महासमुन्द जिले के मन्दिर हसौद थाना इलाक़े से रक्षाबन्धन मनाकर लौट रही दो बहनों के साथ दस लोगों ने मिलकर बलात्कार किया। इस जघन्य और घृणित अपराध का मुख्य आरोपी पूनम ठाकुर भी "भारतीय संस्कृति" की रक्षा करने वाली पार्टी भाजपा के मण्डल उपाध्यक्ष का ही बेटा है, जिसके आपराधिक रिकॉर्ड का पुराना इतिहास है। इसके ख़िलाफ़ थाना मन्दिर हसौद और आरंग में कुल पाँच मामले दर्ज़ हैं। साल 2019 में हत्या के एक मामले में इसे रायपुर पुलिस द्वारा गिरफ़्तार कर जेल भी भेजा गया था यही नहीं वर्ष 2022 में बलात्कार के एक मामले में रायपुर पुलिस ने गिरफ़्तार कर जेल भेजा था। इसकी हिम्मत तो देखिये, यह उस मामले में 17 अगस्त 2023 को ही ज़मानत पर रिहा हुआ था। और आते ही इसने फिर ऐसा घिनौना अपराध किया।

देश में स्त्री-विरोधी अपराधों की बाढ़ आयी हुई है। बलात्कारियों का मनोबल सातवें आसमान पर है। 'राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो' के अनुसार देश में हर रोज़ 90 नाबालिग़ लड़कियों के साथ बलात्कार होता है। इन आँकड़ों से स्थिति की भयंकरता का केवल अन्दाज़ा ही लगाया जा सकता है, क्योंकि ये बस वे मामले हैं जो दर्ज़ होते हैं। ज़्यादातर माता-पिता लोक लाज के डर से ऐसे मामले दर्ज़ ही नहीं कराते। 'राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो' के अनुसार 2020 के मुक़ाबले 2021 में रेप के 13.2 प्रतिशत मामलों में बढ़ोत्तरी हुई है। दलितों में यह प्रतिशत और भी ज़्यादा है 2020 में दलित महिलाओं के रेप के कुल 3,372 मामले दर्ज़ किये गये जिनमें से मात्र 2,959 मामलों में ही चार्जशीट पेश की गयी और सिर्फ़ 225 मामलों में ही सज़ा सुनायी गयी यानी मात्र 6 प्रतिशत मामलों में। इनमें से भी ज़्यादातर की पहुँच ऊपर तक होने, आर्थिक पृष्ठभूमि

मज़बूत होने की वजह से बहुत जल्द वहाँ से निकल आते हैं। बाहर आने के बाद ये फिर इसी तरह की बर्बरता करते हैं क्योंकि क़ानून-पुलिस-नेताशाही सब आँखों पर पट्टी बाँध कर गूँगे-बहरे बने बैठे रहते हैं।

प्रशासनिक ढाँचा और स्त्री-विरोधी अपराध

देश में प्रशासनिक ढाँचे की हालत यह है कि इंसाफ़ के लिए गुहार लगाने से पहले एक स्त्री को सौ बार सोचना पड़ता है। पीड़ित अगर ग़रीब, दलित या अल्पसंख्यक समुदाय से है तो और भी सोचना पड़ता है। उसकी एफ़आईआर दर्ज़ ही नहीं होती। आरोपी अगर उच्च जाति का और आर्थिक तौर मज़बूत है तो और भी मुश्किल। देश में ऐसी कई घटनाएँ हुई हैं जब बलात्कार की प्राथमिकी दर्ज़ कराने गयी लड़की के साथ थाने में दोबारा बलात्कार किया गया। जहाँ स्त्रियों को न्याय दिलाने वाली संस्थाएँ ही स्त्रियों की सबसे बड़ी दुश्मन बन जायें, वहाँ एक स्त्री किस तरह के न्याय की उम्मीद कर सकती है? थाने में एफ़आईआर दर्ज़ कराने गयी लड़की को पुलिस वाले हफ्तों दौड़ाते हैं। ग़लत तरीक़े से सवाल पूछकर परेशान करते हैं। लड़की को ही दोषी ठहराने की कोशिश करना, समझौता करने का दबाव बनाना, एफ़आईआर को हल्का कर देना आम बात है। गैंगरेप को रेप लिख दिया जाता है। ऐसा एक दो नहीं ज़्यादातर मामलों में होता है। प्रशासन तब हरकत में आता है जब व्यापक जन प्रतिरोध खड़ा होता है। पिछले कुछ सालों में जितने भी बलात्कार के चर्चित मामले रहे हैं, उन पर थोड़ा नज़र डालते हैं तो स्थिति और भी साफ़ नज़र आती है। हाथरस काण्ड भला कौन भूल सकता है? जहाँ बलात्कार की शिकार लड़की एक तरफ़ ज़िन्दगी और मौत के बीच जंग लड़ रही थी और देश की इंसाफ़ पसन्द जनता सड़कों पर न्याय के लिए आवाज़ बुलन्द कर रही थी उसके बावजूद आठ दिन बाद चार्जशीट दाख़िल की गयी। उत्तराखण्ड की अंकिता भण्डारी के मामले में चार दिन के बाद एफ़आईआर दर्ज़ की गयी। उन्नाव के कुलदीप सिंह सेंगर के मामले में साल भर लड़की न्याय के लिए भटकती रही। अन्त में उसे उत्तर प्रदेश मुख्यमन्त्री आवास पर आत्मदाह करने पर मजबूर होना पड़ा। देश के पहलवानों का मामला भी हमारे सामने है। क़ानून व्यवस्था के चाक-चौबन्द होने के झूठे विज्ञापनों पर कितना भी पैसा बहा दिया जाय और 'सुरक्षा आपकी ज़िम्मेदारी हमारी' जैसे कितने भी जुमले उछाले जायें, सच्चाई यह है कि इन जगहों पर भी बैठे हुए ज़्यादातर लोग पितृसत्तात्मक स्त्री-विरोधी रुग्ण बीमार कुण्ठित मानसिकता से ग्रस्त हैं। ये अपने क्षेत्र में ऐसे अपराधों को दर्ज़ ही करना नहीं चाहते ताकि इनपर आँच न आये। जो कुछ मामले दर्ज़ भी होते हैं उनमें भी 74 प्रतिशत अपराधी बाइज़्ज़त बरी हो जाते हैं। इस तरह की तमाम घटनाओं ने प्रशासनिक ढाँचों और क़ानून व्यवस्था के चरित्र को भी कटघरे में खड़ा किया है। एक बात तो एक़दम साफ़ है कि केवल क़ानून के भरोसे न्याय पाना असम्भव है। जब देश की संसद में 43 प्रतिशत सांसद अपराधी और बलात्कारी हों, तो सोचा जा सकता है कि वो किस तरह का क़ानून बनायेंगे।

भाजपा का चरित्र

वैसे तो देश की सभी चुनावबाज़ पार्टियों में स्त्री-विरोधी अपराधी बैठे हुए हैं लेकिन भाजपा ने इस मामले में भी सबको पीछे छोड़ दिया। हाल की बलात्कार की तमाम घटनाओं में इनसे जुड़े हुए लोगों की भागीदारी ने भाजपा के स्त्री हितैषी होने के झूठ को तार-तार कर दिया है और इनका असली चेहरा आम जनता के सामने बेनक़ाब किया है। अभी ज़्यादा दिन नहीं हुए जब देश के पहलवानों ख़ासकर महिला पहलवानों ने बृजभूषण शरण सिंह के ख़िलाफ़ यौन शोषण का आरोप लगाया था तो स्त्री सम्मान की रक्षा की बात करने वाली पार्टी भाजपा ने पूरी ताक़त से इस अपराधी का बचाव किया। देश की जनता के सामने एक ट्रेण्ड भी पेश किया गया कि ताक़त से टकराने का क्या मतलब होता है? और यह कोई नयी बात भी नहीं है इससे पहले भी कठुआ में 8 साल की बच्ची से रेप के आरोपी के समर्थन तिरंगा मार्च निकाला गया था जिसमें जम्मू-कश्मीर के भाजपा का राज्य सचिव भी शामिल हुआ था। एक तरफ़ मोदी का कहना है कि जो लोग यूसीसी का विरोध कर रहे हैं वह मुस्लिम बहनों के साथ विश्वासघात कर रहे हैं और दूसरी तरफ़ 15 अगस्त 2022 के दिन गुजरात 2002 के दंगों में पाँच महीने की गर्भवती बिल्कीस बानो का बलात्कार और सात लोगों की हत्या करने वाले 11 अपराधियों को रिहा कर दिया गया। सोचने वाली बात यह भी है कि रिहाई का निर्णय लेने वाले पैनल में बीजेपी के दो नेता भी शामिल थे जिनमें से एक का नाम सी के राउल है, जो गोधरा सीट से बीजेपी विधायक है। बलात्कारियों की रिहाई पर इसने बयान दिया कि सभी 11आरोपी ब्राह्मण हैं, अच्छे संस्कार वाले हैं, किसी ने बुरी नीयत के चलते इनको सज़ा दिया। और इतना ही नहीं, जब ये अपराधी बाहर आये तो विश्व हिन्दू परिषद ने फूल-माला पहनाकर उनका स्वागत किया। इससे पहले भी भाजपा ने कुलदीप सिंह सेंगर, चिन्मयानन्द से लेकर तमाम बलात्कारियों का मज़बूती से साथ दिया है।

अन्तिम बात यह कि ऐसी जघन्य घटनाओं के ख़िलाफ़ मात्र विरोध प्रदर्शन करने से इनको ख़त्म नहीं किया जा सकता, न ही मानवता की गुहारें लगाने से इनमें कोई परिवर्तन लाया जा सकता है। जब तक सामाजिक आर्थिक ढाँचे में स्त्री-विरोधी अपराधों और स्त्री-विरोधी मानसिकता को बढ़ावा देने वाले मूल कारणों की पड़ताल नहीं की जाती, तब तक ऐसे अपराधों से लड़ना सम्भव नहीं है। हमें इस व्यवस्था का विकल्प सोचना ही होगा जो स्त्री को भोग की वस्तु की तरह पेश करती है।

•

सामयिकी

बार-बार हो रही रेल दुर्घटनाओं का कारण क्या है?

नीशू

हमारे देश में आये दिन रेल दुर्घटनाएँ होती रहती हैं। उड़ीसा के बालासोर में 2 जून को हुई पिछले दो दशकों में सबसे बड़ी रेल दुर्घटना ने हर संवेदनशील इंसान को झकझोर कर रख दिया। बालासोर में होने वाली इस बड़ी दुर्घटना के अलावा छोटी-बड़ी दुर्घटनाएँ बार-बार होती रहती हैं। बार-बार होने वाली ये दुर्घटनाएँ हर सोचने-समझने वाले लोगों के ज़ेहन में यह सवाल ज़रूर खड़ा करती होंगी कि ये दुर्घटनाएँ रेल कर्मचारियों की लापरवाही से होती हैं (जैसा कि अक्सर साबित हो जाता है) या इनकी वजह कुछ और ही है?

बार-बार होने वाली रेल दुर्घटनाओं पर विचार करने से पहले बालासोर रेल दुर्घटना की भयावहता और सरकारी तन्त्र की असंवेदनशीलता पर बात करना ज़रूरी है। यह दुर्घटना तीन ट्रेनों, जिसमें दो सवारी गाड़ी और एक मालगाड़ी थी, के टकराने से हुई जिसमें लगभग 300 लोगों की मृत्यु हो गयी और हज़ारों लोग घायल हुए। दुर्घटना के बाद लाशों का ढेर इकट्ठा कर दिया गया। बहुत सारे घायल ज़िन्दा लोगों को भी इसी ढेर में फेंक दिया गया। समय पर पहुँच गये परिजनों ने लाशों के ढेर से अपने परिवार के लोगों को ज़िन्दा निकाला। बाद में एक रिपोर्ट के अनुसार यह बात सामने आई कि बचाव कार्य डॉक्टर या चिकित्साकर्मियों द्वारा नहीं बल्कि ग़ैर चिकित्साकर्मियों द्वारा करवाया गया। ग़रीबों का हितैषी होने का ढोल पीटने वाली मोदी सरकार द्वारा ग़रीबों की लाशों को ठेले पर लादकर इकट्ठे अन्तिम संस्कार करवा दिया गया। जहाँ एक तरफ़ इंसानों की लाशों और घायलों के साथ इस तरह अमानवीय व्यवहार किया जा रहा था वहीं दूसरी तरफ़ पूरा प्रशासनिक अमला घटना स्थल पर प्रधानमन्त्री के लिए टेण्ट, कूलर आदि के इन्तज़ाम में व्यस्त था। प्रधानमन्त्री ने भी घटनास्थल पर ख़ूब नौटंकी दिखाई और कहा कि दोषियों को बख़्शा नहीं जायेगा तो वहीं रेलमन्त्री ने अपनी नाक़ामी से बचने के लिए रेलवे सुरक्षा आयुक्त की रिपोर्ट से पहले ही दुर्घटना की सीबीआई जाँच की घोषणा कर दी। जबकि सीबीआई रेल दुर्घटनाओं की नहीं, अपराधों की जाँच पड़ताल करती है। वह रेलवे की तकनीकी, संस्थागत और राजनीतिक विफलताओं की जाँच-पड़ताल कैसे कर सकती है? वास्तव में पूँजीपतियों की चहेती भाजपा सरकार जाँच कमेटी का इस्तेमाल अपने दामन में लगे दाग़-धब्बों को छुपाने के लिए करती रही है। जाँच कमेटी की सच्चाई यह है कि पिछली कई रेल दुर्घटनाओं की रिपोर्ट अभी तक नहीं आई है। कानपुर में 2016 में हुई रेल दुर्घटना आपको याद होगी जिसमें डेढ़ सौ जानें गयी थीं। तब एनआईए से जाँच करवाने की घोषणा की गयी थी लेकिन आज तक उस जाँच की कोई आधिकारिक रिपोर्ट सामने नहीं आयी। उस रेल दुर्घटना को प्रधानमन्त्री ने तो आतंकी साज़िश क़रार दिया था। ऐसे ही 2017 में आन्ध्र प्रदेश हीराकुण्ड एक्सप्रेस दुर्घटना में 40 यात्रियों की मौत हुई। इसमें भी एनआईए ने अभी तक चार्ज शीट दाखिल नहीं की। जबकि रेलवे सुरक्षा आयुक्त ने अपनी अन्तिम रिपोर्ट में ट्रेन के पटरी से उतरने के लिए 'टंग रेल के फ्रैक्चर' को ज़िम्मेदार ठहराया था। लेकिन इस पर किसी ने ध्यान देना ज़रूरी नहीं समझा। कैग ने अपनी 2022 की रिपोर्ट में बताया था कि अप्रैल 2017 से मार्च 2021 के बीच चार सालों में 16 जोनल रेलवे में 1,129 डिरेलमेण्ट की घटनाएं हुईं यानी हर साल लगभग 282 डिरेलमेण्ट हुए।

'चिन्तन शिविर' रेलवे की भलाई के लिए या रेलवे को निजी हाथों में बेचने के लिए

रेलमन्त्री अश्वनी वैष्णव की अध्यक्षता में 1 और 2 जून को दिल्ली में आयोजित "चिन्तन शिविर" में रेल मन्त्री ने दावा किया कि, "रेलवे 'पाई-पाई से ग़रीब की भलाई' के सिद्धान्त पर काम कर रहा है और देश के प्रत्येक नागरिक के लिए सबसे सस्ती क़ीमत पर अत्यधिक सुरक्षा एवं संरक्षा के साथ सर्वोत्तम सेवाएं देने के उद्देश्य से प्रतिबद्ध है।"

भारतीय रेलवे की ग़रीबों की भलाई के सिद्धान्त की सच्चाई यह है कि शताब्दी और राजधानी जैसी कुछ प्रीमियम ट्रेनों में LHB बोगियाँ (ये बोगी जल्दी पलटती नहीं है यदि पलट भी जाए तो पिचकती नहीं है) इस्तेमाल की जा रही हैं, वहीं स्लीपर व जनरल, जिसमें आम आबादी सफ़र करती है की बोगियाँ ICF (कमज़ोर व पिछड़ी तकनीक) की हैं।

कैग की ही रिपोर्ट में कहा गया है कि मौजूदा मानदण्डों का उल्लंघन करते हुए 27,763 कोचों (62 प्रतिशत) में आग बुझाने के यन्त्र उपलब्ध नहीं कराए गये थे। रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि ट्रैक नवीनीकरण के लिए धन का कुल आवण्टन घट रहा है। ऑडिट रिपोर्ट में यह भी बताया गया है कि ट्रैक रखरखाव और उन्नयन कार्यों के लिए धन का आवण्टन 2018-19 में 9,607.65 करोड़ रुपये से घटकर 2019-20 में 7,417 करोड़ रुपये हो गया था।

चिन्तन शिविर के सत्र का हिस्सा रहे एक रेलवे अधिकारी ने बताया कि, "हाल के महीनों में मालगाड़ियों के पटरी से उतरने की ख़तरनाक घटनाएँ हुई हैं, जिनमें लोको पायलट मारे गये हैं और वैगन पूरी तरह से नष्ट हो गये। लेकिन ऐसी दुर्घटनाओं को रोकने के लिए कोई चर्चा नहीं की गयी।"

बालासोर ट्रेन दुर्घटना के बाद सभी ने 'कवच प्रणाली' का नाम सुना। आख़िर क्या है यह 'कवच प्रणाली'? 2011-12 में

आरडीएसओ द्वारा विकसित ट्रेन टक्कर बचाव प्रणाली को 'कवच' का नाम दिया गया। यह एक तरह की डिवाइस है जो ट्रेन के इंजन के अलावा रेलवे रूट पर भी लगाई जाती है। इससे दो ट्रेनों के एक ही ट्रैक पर एक-दूसरे के क़रीब आने पर ट्रेन सिग्नल, इण्डिकेटर और अलार्म के ज़रिए ट्रेन के पायलट को इसकी सूचना मिल जाती है। 'कवच सिस्टम' द्वारा प्रदान की जाने वाली अन्य विशेषताओं में फाटकों पर आटो सीटी बजाना या किसी जोख़िम के मामले में अन्य ट्रेनों को कण्ट्रोल या सावधान करने के लिए आटो-मेनुअल SOS सिस्टम को तत्काल एक्टिव करना भी शामिल है। जिससे ट्रेनों का संचालन आसपास रोक दिया जाए। इसके अलावा 'कवच सिस्टम' घने कोहरे, बारिश या ख़राब हुए मौसम के दौरान ट्रेन की सुरक्षा सुनिश्चित करता है। यदि लोको पायलट ब्रेक लगाने में विफल रहता है तो भी यह सिस्टम स्वचालित रूप से ब्रेक लगाकर ट्रेन की स्पीड को नियन्त्रित करती है। इसका सफल परीक्षण मार्च 2022 में किया गया और दावा किया गया था कि आत्मनिर्भर भारत के एक हिस्से के रूप में, 2022-23 में सुरक्षा और क्षमता वृद्धि के लिए 2,000 किलोमीटर नेटवर्क को कवच के तहत लाया जायेगा। लेकिन तमाम जुमलों की तरह यह भी सरकार की कोरी लफ़्फ़ाज़ी ही साबित हुई। बालासोर रेल दुर्घटना के बाद भारतीय रेलवे के प्रवक्ता अमिताभ शर्मा ने बताया कि दुर्घटनाग्रस्त रूट पर कवच उपलब्ध नहीं था। वास्तव में, अब तक कुल रेल नेटवर्क के मात्र 2 प्रतिशत पर ही कवच लगाया गया है।

इन तथ्यों की रोशनी में समझा जा सकता है कि बढ़ती रेल दुर्घटनाओं के पीछे मानवीय चूकों की जगह ढाँचागत कमियाँ ज़्यादा ज़िम्मेदार हैं। रेल दुर्घटनाओं को रोकने के लिए तमाम सुरक्षा उपायों का समुचित इस्तेमाल ही नहीं किया जा रहा है।

बढ़ती रेल दुर्घटनाओं का दूसरा प्रमुख कारण ट्रेनों के विशाल नेटवर्क को संचालित करने के लिए कर्मचारियों की कमी है। वास्तव में, नवउदारवादी नीतियों के लागू होने के बाद के 32 वर्षों में और ख़ास तौर पर मोदी सरकार के पिछले 9 वर्षों में, रेलवे में नौकरियों को घटाया जा रहा है, जो नौकरियाँ हैं उनका ठेकाकरण और कैजुअलीकरण किया जा रहा है। नतीजतन, ड्राइवरों समेत सभी रेल कर्मचारियों पर काम का भयंकर बोझ है। कई जगहों पर ड्राइवरों को गाड़ियाँ रोककर झपकियाँ लेनी पड़ रही हैं क्योंकि 18-18, 20-20 घण्टे बिना सोये लगातार गाड़ी चलाने के बाद दुर्घटना की सम्भावना बढ़ जाती है। मार्च, अप्रैल और आधी मई में 12 घण्टे से ज़्यादा काम करने वाले इंजन ड्राइवरों की संख्या क़रीब 35 प्रतिशत थी। इसी प्रकार, लगातार 6-6 दिन रात की ड्यूटी करवाये जाने के कारण भी रेल दुर्घटनाओं की संख्या बढ़ रही है। 2021-22 से 2022-23 के बीच नुक़सानदेह रेल दुर्घटनाओं की संख्या में 37 प्रतिशत की भारी बढ़ोत्तरी हुई। मौजूदा साल में ही मामूली ट्रेन दुर्घटनाओं की संख्या 162 थी, जिनमें से 35 में काम के ज़्यादा बोझ के कारण होने वाली 'सिग्नल पास्ड ऐट डेंजर' वाली चूकें थीं। कई बार ड्राइवरों को बिना शौचालय विराम के 10-10 घण्टे तक ट्रेन चलाना पड़ता है। तमाम समझौतापरस्त यूनियनें जो कि इस या उस चुनावी पार्टी से जुड़ी हैं, यह मसला उठाती ज़रूर हैं, मगर कभी इस पर कुछ करती नहीं हैं। इसी प्रकार सिग्नल प्रणाली में लगे स्टाफ को भी या तो बढ़ाया ही नहीं गया या पर्याप्त रूप में नहीं बढ़ाया गया। नतीजतन, वहाँ भी काम के बोझ के कारण त्रुटियों और चूकों की सम्भावना बढ़ जाती है। यही हाल ग्रुप सी व डी के रेलवे कर्मचारियों का भी है। 2015 से 2022 के बीच ग्रुप सी व डी के 72,000 पदों को रेलवे ने समाप्त कर दिया। इन्हीं श्रेणियों में इस समय रेलवे में क़रीब 3 लाख पद ख़ाली हैं। एक ओर ट्रेनों की संख्या बढ़ रही है, रेलवे स्टेशनों, ट्रैकों की संख्या बढ़ रही है, वहीं पदों को कम कर, ठेकाकरण कर निजी कम्पनियों को मुनाफ़ा कूटने की आज़ादी दी जा रही है और रेलवे कर्मचारियों पर बोझ को बढ़ाया जा रहा है। यह मोदी सरकार की धन्नासेठों की तिजोरी भरने की नीतियों का ही नतीजा है। 2021 से रेलवे ने हर तीसरे दिन एक रेलवे कर्मचारी की नौकरी ख़त्म की है। 2007-08 में रेलवे में 13,86,011 कर्मचारी थे। लेकिन आज यह संख्या 12 लाख के क़रीब आ गयी है। यानी क़रीब पौने दो लाख नौकरियों की कटौती। वहीं 2009 से 2018 के बीच रेलवे में ख़ाली होने वाले क़रीब 3 लाख पदों को नहीं भरा गया है। मोदी सरकार आने के बाद, 2014 में 60754 लोग रिटायर हुए लेकिन भर्तियाँ हुईं 31805 की, उसी प्रकार 2015 में 59960 कर्मचारी रिटायर हुए लेकिन भर्तियाँ हुईं मात्र 15,191 की, 2016 में 53,654 लोग रिटायर हुए जबकि भर्तियाँ हुईं मात्र 27,995। यही हाल उसके बाद के हर साल का भी रहा है। यह वही मोदी सरकार है जिसने हर साल 2 करोड़ रोज़गार देने का वायदा किया था।

यानी, एक ओर रेलवे का नेटवर्क विस्तारित किया गया है, ट्रेनों व स्टेशनों की संख्या बढ़ी है, वहीं दूसरी ओर रेलवे में कर्मचारियों की संख्या को लगातार कम करके मोदी सरकार मौजूदा कर्मचारियों पर काम के बोझ को भयंकर तरीक़े से बढ़ा रही है। ऐसे में, दुर्घटनाओं और त्रासदियों की संख्या में बढ़ोत्तरी को सहज ही समझा जा सकता है और यह भी समझा जा सकता है कि मानवीय चूकों के लिए भी मुख्य तौर पर कर्मचारी नहीं बल्कि रेलवे में सुरक्षा इन्तज़ामात और कर्मचारियों की कमी है। रेलवे में सुरक्षा इन्तज़ामात की कमी और कर्मचारियों की कमी के लिए सरकार की रेलवे को निजी हाथों में बेचने की नीति ज़िम्मेदार है। ऐसे जर्जर ढाँचे के भीतर मोदी सरकार बुलेट ट्रेन चलाने के शेख़चिल्ली के ख़्वाब दिखा रही है, तो इससे बड़ा भद्दा मज़ाक और कुछ नहीं हो सकता। तात्कालिक तौर पर निश्चय ही ऐसी दुर्घटनाओं के लिए किसी व्यक्ति की चूक या ग़लती ज़िम्मेदार नज़र आ सकती है। लेकिन यह एक व्यवस्थागत समस्या है जिसके लिए मौजूदा मोदी सरकार की छँटनी, तालाबन्दी और ठेकाकरण की नीतियाँ और रेलवे को टुकड़ों-टुकड़ों में निजी धन्नासेठों के हाथों में सौंप देने की मोदी सरकार की योजना ज़िम्मेदार है। यह मोदी सरकार की पूँजीपरस्त और लुटेरी नीतियों का परिणाम है। इस बात को हमें समझना होगा क्योंकि सरकारें ऐसी त्रासदियों की ज़िम्मेदारी भी जनता पर डाल देती हैं और अपने आपको कठघरे से बाहर कर देती हैं।

•

सामयिकी

फ़िल्मों के माध्यम से फ़ासीवादी दुष्प्रचार

सौम्यध्रुव

फ़ासीवादी भाजपा ने अपने फ़ासीवादी एजेण्डे के प्रचार के लिए हर माध्यम का बहुत ही कुशलतापूर्वक इस्तेमाल किया है। सत्ता में आने के बाद पाठ्यक्रमों से लेकर हर चीज़ को अपने फ़ासीवादी प्रोजेक्ट का हिस्सा बना लेने वाले फ़ासीवादियों ने जिस तरह से सिनेमा का इस्तेमाल अपने नफ़रती एजेण्डे को फैलाने में किया है, वैसा पहले कभी देखने को नहीं मिला। बीते कुछ सालों में तमाम ऐसी फ़िल्मों का भाजपा और आरएसएस के नेताओं ने खुले तौर पर प्रचार किया है, जिसमें भर-भर के झूठ और अल्पसंख्यकों के ख़िलाफ़ नफ़रत ही परोसी गयी है। महँगाई, बेरोज़गारी, शिक्षा और चिकित्सा जैसे ज़रूरी मुद्दों से जनता का ध्यान भटकाने के लिए मोदी सरकार का प्रचार तन्त्र ऐसे सिनेमा को जनता के बीच लोकप्रिय बना रहा है जो आम जनता के दिमाग़ में अल्पसंख्यकों के ख़िलाफ़ नफ़रत भरने का काम कर रही है।

हाल ही में कश्मीर फ़ाइल्स जैसी नफ़रत से भरी फ़िल्म को राष्ट्रीय पुरस्कार मिला। इसमें भी सबसे हास्यास्पद तो यह है कि कश्मीर फ़ाइल्स जैसी फ़िल्म को देश में "एकता और अखण्डता" बढ़ाने के लिए यह पुरस्कार दिया गया है जबकि यह फ़िल्म खुले तौर पर मुसलमानों के ख़िलाफ़ झूठ और नफ़रत फैलाकर आम जनता को आपस में लड़ाने और बाँटने का काम करती है। इन फ़ासीवादी प्रोपेगैण्डा फ़िल्मों की विशेषता यह है कि ये धार्मिक अल्पसंख्यक समुदाय के ख़िलाफ़ नफ़रत का ज़हर बोने के लिए किसी भी हद तक झूठ बोलने, इतिहास के तथ्यों को ठीक उल्टा करके पेश करने, जनता के अधिकारों के लिए संघर्ष करने वाले सामाजिक-राजनीतिक कार्यकर्ताओं की छवि को ख़राब करने के लिए तरह-तरह के झूठे नैरेटिव गढ़ने का काम करती हैं। कश्मीर फ़ाइल्स के अलावा "द केरला स्टोरी", "72 हूरें" और "ग़दर-2" जैसी तमाम ऐसे फ़िल्में बनी हैं जो भाजपा और आरएसएस के अल्पसंख्यक मुस्लिम विरोधी एजेण्डे को आगे बढ़ाने का काम करती हैं। विशेष तौर पर 'कश्मीर फ़ाइल्स' और 'द केरला स्टोरी' देश भर में काफ़ी चर्चित हुईं। इन फ़िल्मों की चर्चा इसलिए भी ज़्यादा हुई क्योंकि भाजपा के नेताओं ने जगह-जगह इसकी स्पेशल स्क्रीनिंग भी करायी। विश्वविद्यालयों में इसके लिए स्क्रीनिंग और टॉक सेशन रखे गये। बहुत से विश्वविद्यालयों और शिक्षण संस्थानों में संघी अध्यापक छात्राओं के समूह को 'द केरला स्टोरी' फ़िल्म दिखाने के लिए ले गये।

कश्मीर फ़ाइल्स की बात करें तो उसमें कश्मीरी पण्डितों की त्रासदी दिखाने की आड़ में संघ के अल्पसंख्यक विरोधी नफ़रती एजेण्डे को दिखाया गया है। इस फ़िल्म में कश्मीरी पण्डितों और पूरे कश्मीर की समस्या को उसके ऐतिहासिक सन्दर्भ से काटकर एक स्वतन्त्र समस्या के रूप में पेश किया गया है। इस फ़िल्म में बेहद शातिराना ढ़ंग से आधे सच में तमाम ऐसे झूठ को मिलाकर दिखाया गया है जो आम जनता के दिमाग़ में मुस्लिमों और वामपन्थियों के ख़िलाफ़ नफ़रत भरने का काम करती है। ऐसा कोई भी व्यक्ति जो कश्मीर के इतिहास के बारे में ठीक से नहीं जानता है वो बेहद आसानी से इस नफ़रती साज़िश का शिकार हो सकता है। ये फ़िल्म कश्मीर समस्याओं को लेकर विवेक पैदा करने के बजाय नफ़रत और गुस्सा पैदा करने का ही काम करती है। फ़िल्म के रिलीज़ होने के बाद ही तमाम ऐसे वीडियो सामने आ रहे हैं जिसमें मुस्लिमों के प्रति नफ़रत दिखायी जा रही है। कई ऐसे वीडियो सामने आये हैं जिसमें फ़िल्म देखते हुए कुछ लोग सिनेमाघरों में नफ़रती नारे लगा रहे हैं। फ़िल्म को देखने के बाद सिनेमा हॉल से बाहर निकले लोगों की प्रतिक्रिया को भी सोशल मीडिया पर प्रचारित करके नफ़रत और ग़ुस्से को और ज़्यादा तूल दिया जा रहा है। तमाम संघी नेता इस बात का प्रचार कर रहे हैं कि फ़िल्म में तो सब सच ही दिखाया गया है लेकिन फ़िल्म में इसका कोई ज़िक्र नहीं मिलता कि किस प्रकार आज़ादी के बाद कश्मीरियों ने इस्लाम के आधार पर बने पाकिस्तान में न मिलने का फ़ैसला किया था। कश्मीर में रायशुमारी कराने के वायदे से भारतीय राज्य के मुकरने, ज़ोर-जबर्दस्ती और दमन की वजह से कश्मीर समस्या लगातार उलझती चली गयी जिसका नतीजा कश्मीर घाटी की मुस्लिम आबादी में लगातार बढ़ते अलगाव के रूप में सामने आया। फ़िल्म में इसका भी कोई हवाला नहीं मिलता है कि कश्मीरी

मुस्लिम आबादी के बीच भारत की राज्यसत्ता से बढ़ते अलगाव के बावजूद 1980 के दशक के उत्तरार्द्ध से पहले कश्मीरी पण्डित अल्पसंख्यक आबादी के ख़िलाफ़ पूर्वाग्रहित भले ही हों लेकिन नफ़रत और हिंसा जैसे हालात नहीं थे।

इसी तरह "द केरला स्टोरी" भी ऐसे झूठे और नफ़रती नैरेटिव को प्रस्तुत करने वाली फ़िल्म है। इस फ़िल्म का झूठ तो इसके रिलीज़ होने से पहले ही उजागर हो गया था। पहले इस फ़िल्म के डायरेक्टर सुदिप्तो सेन ने यह दिखाया कि 32000 हिन्दू लड़कियों का धर्म परिवर्तन किया गया। लेकिन जैसे ही इसके ख़िलाफ़ चर्चा होने लगी और यह मामला सुप्रीम कोर्ट गया, तो उसके बाद चुपके से फ़िल्म के डायरेक्टर सुदिप्तो सेन ने 32000 के आँकड़े को सीधे 3 कर दिया। असल में उसमें से भी मात्र 1 लड़की ही हिन्दू थी। जबकि फ़िल्म में इस तरीक़े से दिखाया गया है जैसे हज़ारों हिन्दू लड़कियों का धर्म परिवर्तन सिर्फ़ केरल में किया जा रहा है। कुल मिलाकर बात यह है कि इस फ़िल्म के ज़रिये भी फ़ासीवाद अपने प्रचार तन्त्र के जाल फ़ैला रहा है। इस फ़िल्म की तमाम घटिया, बेबुनियादी तर्कों के बावजूद यह एक झूठ, जिसे पहले कई बार बोला जा चुका है, को स्थापित करने का काम करती है, और उसे लोगों में कॉमन सेंस के रूप में बिठाने का काम करती है। उसके बाद लोग इन झूठों की पड़ताल किये बग़ैर इसे सच मान बैठते हैं और फ़ासीवादी राजनीति के जाल में जा फँसते हैं। यह कोई पहली फ़िल्म नहीं है जो मुसलमानों के ख़िलाफ़ प्रचार के रूप में बनी हो। अभी लगातार ही उन फ़िल्मों को जान-बूझकर बढ़ावा दिया जा रहा है, जो मुस्लिम-विरोधी हों, उन्हें किसी न किसी रूप में जनता का दुश्मन साबित करती हों। हाल ही में रिलीज़ हुई ग़दर-2 भी इसका एक उदाहरण है। जिसमें पाकिस्तान की आड़ लेकर समुचे मुस्लिम समुदाय के ख़िलाफ़ ही नफ़रत को बढ़ावा दिया गया है। ऐसा नहीं है कि मोदी सरकार के सत्ता में आने से पहले ऐसे एजेण्डों पर फ़िल्में नहीं बनती थी। लेकिन मोदी सरकार के दौर में जिस तरह खुलेआम और बहुत अधिक नफ़रती भाषा में यह हो रहा है, वह अभूतपूर्व है।

2014 में फ़ासीवादी मोदी सरकार के आने के बाद से ही बॉलीवुड के फ़िल्मों में एक ख़ास तरह का रुझान देखने को मिला है जिसमें कुछ ख़ास शैली वाली फ़िल्में ज़्यादा बनने लगीं जैसे राजनीतिक बायोपिक, खेलों पर आधारित फ़िल्में, ऐतिहासिक फ़िल्में, युद्ध और सेना पर आधारित फ़िल्में तथा कुछ "सामाजिक सन्देशों" वाली फ़िल्में भी। उदाहरणों के साथ बात करें तो राजनीतिक बायोपिक में सबसे चर्चित रही फ़िल्म PM Modi जो कि प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी के जीवन पर आधारित है जिसमें केवल झूठ परोसा गया है। फ़िल्म में तथ्यों से इतर नरेन्द्र मोदी को महामानव के तौर पेश किया गया है। 2002 के गुजरात दंगों के बारे में भी फ़िल्म केवल झूठ ही दिखाती है। हालांकि झूठ और फ़ज़ीवाड़े से भरी यह फ़िल्म बहुत चल नहीं पायी। राजनीतिक बायोपिक में कुछ अन्य फ़िल्मों की बात करें तो विवेक अग्निहोत्री की ही फ़िल्म "द ताशकन्द फ़ाइल्स" जो 2019 में रिलीज़ हुई थी काफ़ी चर्चित रही। इस फ़िल्म में भी आधे सच और झूठ का मिश्रण करके संघी नफ़रत और झूठ के एजेण्डे को ही दिखाया गया है। फ़िल्म में धर्मनिरपेक्षता को एक गाली के तौर पर पेश किया गया है। ऐतिहासिक फ़िल्मों जैसे बाजीराव मस्तानी, पद्मावत और केसरी जैसी अन्य फ़िल्मों में भी इतिहास के तथ्यों को तोड़-मरोड़कर संघी अन्धराष्ट्रवादी नफ़रती एजेण्डे को ही आगे बढ़ाया गया है। केसरी में तो संघी मुस्लिम विरोधी एजेण्डे को आगे बढ़ाने के लिए ऐतिहासिक तथ्यों को सीधे उलट कर ही पेश किया गया है। युद्ध और सेना पर बनी फ़िल्मों में ख़ास तौर पर "उरी: द सर्जिकल स्ट्राइक" काफ़ी चर्चित हुई जिसको राष्ट्रीय फ़िल्म पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया। इस फ़िल्म में भी देशभक्ति की आड़ में अन्धराष्ट्रवादी उन्माद को ही बढ़ाने का काम किया गया है। ऐसी फ़िल्मों में युद्धों का महिमामण्डन बढ़ा-चढ़ाकर किया जाता है। जबकि हम सच जानते हैं कि राष्ट्र के नाम पर लड़े जा रहे इन युद्धों में आम घरों के युवा ही मरते हैं क्योंकि सेना में अम्बानी-अडानी और किसी नेता-मन्त्री के बच्चे तो नहीं जाते हैं। अब बात करें कुछ ऐसी फ़िल्मों की जो "सामाजिक सन्देशों" पर बनी हैं, जिसको बहुत बढ़ा-चढ़ाकर पेश किया जाता है - उदाहरण के तौर पर "टॉयलेट: एक प्रेम कथा"। ऐसी फ़िल्मों में भी सरकार की फ़र्जी उपलब्धियों का ही गुणगान किया जाता है। मुख्यधारा में बन रही है तमाम अन्य फ़िल्मों का भी कमोबेश हाल कुछ ऐसा ही है। बीते दिनों में बनी 'पठान' फ़िल्म ऐसी है, जिसका संघियों ने काफ़ी विरोध किया था। लेकिन इस फ़िल्म को भी देखा जाए तो यह देश को बचाने के नाम पर अन्धराष्ट्रवादी एजेण्डे को ही आगे बढ़ाती है। दुखःद ये है कि ऐसी घटिया फ़िल्मों को लोग पसन्द करते हैं। आमतौर पर ही हिन्दी सिनेमा में हमेशा से ऐसी फ़िल्में बनती रही हैं जो आम जनता की चेतना को तर्क और बुद्धि से लैस करने के बजाए झूठ, अश्लीलता, नस्लीय भेदभाव और नफ़रत से भरती हैं। तमाम ऐसे फ़िल्ममेकर और बुद्धिजीवी अक्सर यह कहते हुए पाये जाते हैं कि जनता ऐसी फ़िल्में देखती ही है इसलिए ऐसी फ़िल्में बनती

है। जबकि सच इसके ठीक उलट है। सच्चाई तो यह है कि हर जगह ऐसी फ़िल्मों का ही प्रचार किया जाता है जो फूहड़ता, अश्लीलता और हिंसा से भरी हों और जिनमें नफ़रती एजेण्डा हो। ऐसी कोई भी फ़िल्म जो इस व्यवस्था के सच को ज़रा-सा भी उजागर करती है उसे जनता तक पहुँचने से रोका जाता है।

विभिन्न कलाओं में ख़ासतौर पर सिनेमा का एक विशेष महत्व होता है। जनता की चेतना पर फ़िल्मों का बहुत गहरा असर होता है। अन्याय और शोषण पर टिकी ये व्यवस्था कभी नहीं चाहेगी कि लोगों की चेतना तर्क और बुद्धि से लैस हो और इसलिए ऐसी फ़िल्मों का ही प्रचार किया जाता है जो जनता की चेतना को कुन्द करती हैं। जर्मनी के महान नाटककार, कवि और फ़ासीवादी विरोधी योद्धा बेर्टोल्ट ब्रेष्ट ने कहा था कि 'कला वास्तविकता का दर्पण नहीं बल्कि एक हथौड़ा है जिससे वास्तविकता को आकार दिया जा सकता है।' हमें इस बात को समझना होगा कि कला और सिनेमा केवल मनोरंजन के लिए ही नहीं होती बल्कि इस शोषणकारी व्यवस्था का सच और एक नये समाज के निर्माण के लिए भी होती है। हम जानते हैं कि तमाम कला के माध्यमों में सिनेमा बहुत उन्नत माध्यम है। सिनेमा के माध्यम से जनता की चेतना को और उन्नत किया जा सकता है। ऐसी प्रगतिशील फ़िल्मों का दुनिया भर में एक इतिहास रहा है। भारत में भी ऐसी फ़िल्में बनती रही हैं जो इस व्यवस्था का सच दिखाती हैं और जनता की चेतना को तर्कणा और जनवाद से लैस करती हैं। पर आज के इस फ़ासीवादी दौर में तमाम ऐसी फ़िल्मों का बड़े पैमाने पर प्रचार-प्रसार किया जा रहा है जो आम लोगों की चेतना को केवल और केवल झूठ और नफ़रत से भरती हैं। ऐसी फ़िल्मों को सम्मानित किया जा रहा है जो जनता को आपस में बाँटकर देश भर में सामाजिक अलगाव को बढ़ावा दे रही हैं। पूरे समाज में ही इन फ़िल्मों के माध्यम से नफ़रत की फ़सल बोयी जा रही है, जिसका परिणाम हम आये दिन देश में हो रहे दंगों के रूप में देखते हैं।

तमाम इंसाफ़पसन्द लोगों को नफ़रत और झूठ से भरी इन फ़ासीवादी प्रोपेगैण्डा फैलाने वाली फ़िल्मों का खुले तौर पर विरोध करना होगा। •

'आह्वान' के पाठकों से एक अपील

दोस्तो,

'आह्वान' सारे देश में चल रहे वैकल्पिक मीडिया के प्रयासों की एक कड़ी है। हम सत्ता प्रतिष्ठानों, फ़ण्डिंग एजेंसियों, पूँजीवादी घरानों एवं चुनावी राजनीतिक दलों से किसी भी रूप में आर्थिक सहयोग लेना घोर अनर्थकारी मानते हैं। हमारी दृढ़ मान्यता है कि जनता का वैकल्पिक मीडिया सिर्फ़ जन संसाधनों के बूते खड़ा किया जाना चाहिए।

एक लम्बे समय से बिना किसी क़िस्म का समझौता किये 'आह्वान' सतत प्रचारित-प्रकाशित हो रही है। हम आपको बताना चाहते हैं कि विगत कई अंकों से पत्रिका आर्थिक संकट का सामना कर रही है। ऐसे में 'आह्वान' अपने तमाम पाठकों, सहयोगियों से सहयोग की अपेक्षा करती है। हम आप सभी सहयोगियों, शुभचिन्तकों से अपील करते हैं कि वे अपनी ओर से अधिकतम सम्भव आर्थिक सहयोग भेजकर परिवर्तन के इस हथियार को मज़बूती प्रदान करें। आप – 1. आजीवन सदस्यता ग्रहण कर के सहयोग करें। 2. अपने मित्रों को 'आह्वान' की सदस्यता दिलवाएँ। 3. 'आह्वान' के लिए आर्थिक सहयोग भेजें। साथ ही, 'आह्वान' के वितरण में लगे सहयोगियों से अपील है कि वे पत्रिका की भुगतान राशि यथासम्भव शीघ्र भेजने की व्यवस्था करें।

आप अपना सहयोग/सदस्यता राशि नीचे दिये गये बैंक खाते में भेज सकते हैं या आह्वान के पते पर चेक/ड्राफ़्ट/मनी-ऑर्डर भेज सकते हैं। आर्थिक सहयोग या सदस्यता राशि भेजते समय हमें सूचित अवश्य करें और अपना पूरा पता और फ़ोन नम्बर ज़रूर दें।

मुक्तिकामी छात्रों-युवाओं का आह्वान, बैंक ऑफ़ बड़ौदा, बादली शाखा, खाता नं. 21360100010629,
IFSC: BARB0TRDBAD (BARB के बाद 0 (शून्य) है)

साभिवादन,
सम्पादक

कहानी

गूँगे

रांगेय राघव

'शकुन्तला क्या नहीं जानती?'

'कौन? शकुन्तला! कुछ भी नहीं जानती।'

'क्यों साहब? क्या नहीं जानती? ऐसा क्या काम है जो वह नहीं कर सकती?'

'वह उस गूँगे को नहीं बुला सकती।'

'अच्छा बुला दिया तो?'

'बुला दिया!'

बालिका ने एक बार कहनेवाली की ओर द्वेष से देखा और चिल्ला उठी -- दूं दे!

गूँगे ने नहीं सुना। तमाम स्त्रियाँ खिलखिलाकार हँस पड़ीं। बालिका ने मुँह छिपा लिया।

जन्म से वज्र बहरा होने के कारण वह गूँगा है। उसने अपने कानों पर हाथ रखकर इशारा किया। सब लोगों को उसमें दिलचस्पी पैदा हो गयी, जैसे तोते को राम-राम कहते सुनकर उसके प्रति हृदय में एक आनन्द-मिश्रित कुतूहल उत्पन्न हो जाता है।

चमेली ने अँगुलियों से इंगित किया-फिर?

मुँह के आगे इशारा करके गूँगे ने बताया-भाग गयी। कौन? फिर समझ में आया। जब छोटा ही था तब 'माँ' जो घूँघट काढ़ती थी, छोड़ गई। क्योंकि 'बाप', अर्थात् बड़ी-बड़ी मूँछें, मर गया था। और फिर उसे पाला है-किसने? यह तो समझ में नहीं आया, पर वे लोग मारते बहुत हैं।

करुणा ने सबको घेर लिया। वह बोलने की कितनी जबरदस्त कोशिश करता है! लेकिन नतीज़ा कुछ नहीं, वह केवल कर्कश कांय-कांय का ढेर अस्फुट ध्वनियों का वमन, जैसे आदिम मानव अभी भाषा बनाने में जी-जान से लड़ रहा हो।

चमेली ने पहली बार अनुभव किया कि यदि गले में काकल तनिक ठीक नहीं हो तो मनुष्य क्या से क्या हो जाता है। कैसी यातना है कि वह अपने हृदय को उगल देना चाहता है किन्तु उगल नहीं पाता।

सुशीला ने आगे बढ़कर इशारा किया -- मुँह खोल! और गूँगे ने मुँह खोल दिया। लेकिन उसमें कुछ दिखाई नहीं दिया। पूछा, गले में कौआ है? गूँगा समझ गया। इशारे से ही बता दिया-किसी ने बचपन में गला साफ़ करने की कोशिश में काट दिया। और वह ऐसे बोलता है जैसे घायल पशु कराह उठता है, शिकायत करता है, जैसे कुत्ता चिल्ला रहा हो और कभी-कभी उसके स्वर में ज्वालामुखी के विस्फोट की-सी भयानकता थपेड़े मार उठती है। वह जानता है कि वह सुन नहीं सकता। और बताकर मुस्कराता है। वह जानता है कि उसकी बोली को कोई नहीं समझता फिर भी बोलता है।

सुशीला ने कहा, 'इशारे ग़ज़ब के करता है। अक़्ल बहुत तेज़ है।' पूछा-खाता क्या है, कहाँ से मिलता है?

वह कहानी ऐसी है जिसे सुनकर सब स्तब्ध बैठे हैं। हलवाई के यहाँ रात-भर लड्डू बनाये हैं; कड़ाही माँजी है, नौकरी की है, कपड़े धोये हैं, सबके इशारे हैं, लेकिन-

गूँगे का स्वर चीत्कार में परिणत हो गया है। सीने पर हाथ मारकर इशारा किया-हाथ फैलाकर कभी नहीं माँगा, भीख नहीं लेता; भुजाओं पर हाथ रखकर इशारा किया -- मेहनत का खाता हूँ, और पेट बजाकर दिखाया, इसके लिए, इसके लिए...

अनाथाश्रम के बच्चों को देखकर चमेली रोती थी। आज भी उसकी आँखों में पानी आ गया। वह सदा से ही कोमल है। सुशीला से बोली-इसे नौकर भी तो नहीं रखा जा सकता।

पर गूँगा उस समय समझ रहा था। वह दूध ले आता है। कच्चा मँगाना हो थन काढ़ने का इशारा कीजिए, औटा हुआ मँगाना हो, हलवाई जैसे एक बर्तन से दूध दूसरे बर्तन में उठाकर डालता है, वैसी बात कहिए। साग मँगाना हो गोल-गोल कीजिए या लम्बी उँगली दिखाकर समझाइए... और भी...और भी... और चमेली ने इशारा किया-हमारे यहाँ रहेगा?

गूँगे ने स्वीकार तो किया किन्तु हाथ से इशारा किया -- क्या देगी? खाना?

'हाँ', चमेली ने सिर हिलाया।

'कुछ पैसे?'

चार उँगलियाँ दिखा दीं। गूँगे ने सीने पर हाथ मारकर जैसे कहा -- तैयार हैं। चार रुपए।

सुशीला ने कहा -- पछताओगी। भला यह क्या काम करेगा?

'मुझे तो दया आती है बेचारे पर', चमेली ने उत्तर दिया -- न हो बच्चों की तबीयत बहलेगी।

घर पर बुआ मारती थी, फूफा मारता था, क्योंकि उन्होंने उसे पाला था। वे चाहते थे कि बाजार में पल्लेदारी करे, बारह-चौदह आने कमा कर लाये और उन्हें दे दे, बदले में वे

उसके सामने बाजरे और चने की रोटियाँ डाल दें। अब गूँगा घर भी नहीं जाता। यहीं काम करता है। बच्चे चिढ़ाते हैं। कभी नाराज़ नहीं होता। चमेली के पति सीधे-सादे आदमी हैं। पल जायेगा बेचारा, किन्तु वे जानते हैं कि मनुष्य की करुणा की भावना उसके भीतर गूँगेपन की प्रतिच्छाया है, जब वह बहुत कुछ करना चाहता है, किन्तु कर नहीं पाता। इसी तरह दिन बीत रहे हैं।

चमेली ने पुकारा -- गूँगे?

किन्तु कोई उत्तर नहीं आया, उठकर ढूँढा -- कुछ पता नहीं लगा।

बसन्ता ने कहा -- मुझे तो कुछ नहीं मालूम।

'भाग गया होगा', पति को उदासीन स्वर सुनायी दिया। सचमुच वह भाग गया था। कुछ भी समझ में नहीं आया। चुपचाप जाकर खाना पकाने लगी। क्यों भाग गया! नाली का कीड़ा? वह छत उठाकर सिर पर रख दी, फिर भी मन नहीं भरा। दुनिया हँसती है, हमारे घर को अब अजायबघर का नाम मिल गया है... किसलिए...

जब बच्चे, और वह भी खाकर उठ गए तो चमेली बची रोटियाँ कटोरदान में रखकर उठने लगी। एकाएक द्वार पर कोई छाया हिल उठी। वह गूँगा था। हाथ से इशारा किया- भूखा हूँ।

'काम तो करता नहीं, भिखारी।' फेंक दी उसकी ओर रोटियाँ। रोष से पीठ मोड़कर खड़ी हो गई। किन्तु गूँगा खड़ा रहा। रोटियाँ छुईं तक नहीं। देर तक दोनों चुप रहे। फिर न जाने क्यों गूँगे ने रोटियाँ उठा लीं और खाने लगा। चमेली ने गिलासों में दूध भर दिया। देखा, गूँगा खा चुका है। उठी और हाथ में चिमटा लेकर उसके पास खड़ी हो गई।

'कहाँ गया था?' चमेली ने कठोर स्वर से पूछा।

कोई उत्तर नहीं मिला। अपराधी की भाँति सिर झुक गया। सड़ से एक चिमटा उसकी पीठ पर जड़ दिया। किन्तु गूँगा रोया नहीं। वह अपने अपराध को जानता था। चमेली की आँखों में से दो बूँदें ज़मीन पर टपक गयीं। तब गूँगा भी रो दिया।

और फिर यह भी होने लगा कि गूँगा जब चाहे भाग जाता, फिर लौट आता। उसे जगह-जगह नौकरी करके भाग जाने की आदत पड़ गयी थी। और चमेली सोचती कि उसने उस दिन भीख ली थी या ममता की ठोकर को निस्संकोच स्वीकार कर लिया था?

बसन्ता ने कसकर गूँगे को चपत जड़ दी। गूँगे का हाथ और न जाने क्यों अपने-आप रुक गया। उसकी आँखों में पानी भर आया और वह रोने लगा। उसका रुदन इतना कर्कश था कि चमेली को चूल्हा छोड़कर उठ आना पड़ा। गूँगा उसे देखकर इशारों से कुछ समझाने लगा। देर तक चमेली उससे पूछती रही। उसकी समझ में इतना ही आया कि खेलते-खेलते बसन्ता ने उसे मार दिया था।

बसन्ता ने कहा -- अम्मां! यह मुझे मारना चाहता था।

'क्यों रे?' चमेली ने गूँगे की ओर देखकर कहा। वह इस समय भी नहीं भूली कि गूँगा कुछ सुन नहीं सकता। लेकिन गूँगा भाव-भंगिमा से समझ गया। उसने चमेली का हाथ पकड़ लिया। एक क्षण को चमेली को लगा जैसे उसी के पुत्र ने आज उसका हाथ पकड़ लिया था। एकाएक घृणा से उसने हाथ छुड़ा लिया। पुत्र के प्रति मंगलकामना ने उसे ऐसा करने को मजबूर कर दिया।

कहीं उसका भी बेटा गूँगा होता, वह भी ऐसे ही दुख उठाता। वह कुछ भी नहीं सोच सकी। एक बार फिर गूँगे के प्रति हृदय में ममता भर आई। वह लौटकर चूल्हे पर जा बैठी, जिसमें अन्दर आग थी, लेकिन उसी आग से वह सब पक रहा था जिससे सबसे भयानक आग बुझती है-पेट की आग, जिसके कारण आदमी ग़ुलाम हो जाता है। उसे अनुभव हुआ कि गूँगे में बसन्ता से कहीं अधिक शारीरिक बल था। कभी भी गूँगे की भाँति शक्ति से बसन्ता ने उसका हाथ नहीं पकड़ा था। लेकिन फिर भी गूँगे ने अपना उठा हाथ बसन्ता पर नहीं चलाया।

रोटी जल रही थी। झट से पलट दी। वह पक रही थी; इसी से बसन्ता बसन्ता है...गूँगा गूँगा है...

चमेली को विस्मय हुआ। गूँगा शायद यह समझता है कि बसन्ता मालिक का बेटा है, उस पर हाथ नहीं चला सकता। मन ही मन थोड़ा विक्षोभ भी हुआ, किन्तु पुत्र की ममता ने इस विषय पर चादर डाल दी। और फिर याद आया, उसने उसका हाथ पकड़ा था। शायद इसीलिए कि उसे बसन्ता को दण्ड देना ही चाहिए, यह उसको अधिकार है...।

किन्तु वह तब समझ नहीं सकी, और उसने सुना गूँगा कभी-कभी कराह उठता था। चमेली उठकर बाहर गई। कुछ सोचकर रसोई में लौट आई और रात की बासी रोटी लेकर निकली।

'गूँगे!' उसने पुकारा।

कान के न जाने किस पर्दे में कोई चेतना है कि गूँगा उसकी आवाज़ को कभी अनुसना नहीं कर सकता; वह आया। उसकी आँखों में पानी भरा था। जैसे उनमें एक शिकायत थी, पक्षपात के प्रति तिरस्कार था। चमेली को लगा कि लड़का बहुत तेज़ है। बरबस ही उसके होठों पर मुस्कान छा गई। कहा, 'ले खा ले।'-और हाथ बढ़ा दिया।

गूँगा इस स्वर की, इस सबकी उपेक्षा नहीं कर सकता। वह हँस पड़ा। अगर उसका रोना एक अजीब दर्दनाक आवाज़ थी तो यह हँसना और कुछ नहीं-एक अचानक गुर्राहट-सी चमेली के कानों में बज उठी। उस अमानवीय स्वर को सुनकर वह भीतर ही भीतर काँप उठी।

(शेष पेज 35 पर)

सामयिकी

आपस में नहीं, सबको रोज़गार की गारण्टी के लिए लड़ो!

अविनाश (इलाहाबाद)

अभी हाल ही में बीटीसी-बीएड विवाद में सर्वोच्च न्यायालय का फ़ैसला आया जिसके बाद यह मुद्दा सुलझने की जगह और उलझता हुआ नज़र आ रहा है। सुप्रीम कोर्ट ने राजस्थान हाईकोर्ट के फ़ैसले को बरक़रार रखते हुए प्राथमिक अध्यापक (PRT) के लिए बीएड की योग्यता को समाप्त कर दिया है। फ़ैसले के बाद छात्र समुदाय में दो फाड़ हो गया है। जहाँ इसके ख़िलाफ़ देश के विभिन्न हिस्सों में बीएड अभ्यर्थी सोशल मीडिया से लेकर सड़कों पर उतर कर प्रतिरोध कर रहे हैं। वहीं दूसरी ओर बीटीसी अभ्यर्थी इस फ़ैसले को जीत के तौर पर ले रहे हैं और जश्न मना रहे हैं। इस पूरी प्रक्रिया में रोज़गार गारण्टी का महत्वपूर्ण सवाल नेपथ्य में धकेल दिया गया है।

बीटीसी-बीएड विवाद क्या है?

देश में शिक्षक भर्ती के लिए योग्यता का निर्धारण राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद (NCTE) नामक संस्था करती है। परिषद ने 28 जून 2018 में एक अधिसूचना (Notification) जारी कर प्राथमिक शिक्षकों के लिए बीएड अभ्यार्थियों को योग्य क़रार दिया था। इस अधिसूचना के बाद राजस्थान सरकार द्वारा शिक्षक पात्रता परीक्षा के लिए अधिसूचना जारी की गयी जिसमें बीएड अभ्यर्थियों को प्राथमिक शिक्षक बनने के लिए अयोग्य माना गया। इन्हीं दो अधिसूचनाओं के बाद इस विवाद ने ज़ोर पकड़ा। राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद के फ़ैसले को राजस्थान हाईकोर्ट में चुनौती दी गयी। दूसरी तरफ़ डिप्लोमा इन एलीमेण्ट्री एजुकेशन (D.El.ED) के अभ्यर्थियों ने भी बीएड धारकों की प्राथमिक शिक्षक के पद पर भर्ती को चुनौती दी। इस पूरे मामले में राजस्थान सरकार डीएलएड और बीटीसी अभ्यर्थियों के साथ खड़ी रही। 25 नवम्बर 2021 को हाईकोर्ट ने राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद अधिसूचना को ख़ारिज कर बीएड अभ्यर्थियों को प्राथमिक शिक्षक के लिए अयोग्य घोषित कर दिया। इसके बाद राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद ने राजस्थान हाईकोर्ट के फ़ैसले के ख़िलाफ़ सर्वोच्च न्यायालय में अपील की।

ध्यान रहे कि इस पूरी प्रक्रिया के दौरान विभिन्न राज्यों में शिक्षक भर्ती प्रक्रिया चलती रही और हज़ारों की संख्या में बीएड अभ्यर्थी प्राथमिक शिक्षक बने। अब अचानक आये इस फ़ैसले के बाद इनका भविष्य क्या होगा यह भी अभी अँधेरे में है। सर्वोच्च न्यायालय ने अपने फ़ैसले में अनुच्छेद 21A का हवाला देते हुये कहा कि "शिक्षा के मौलिक अधिकार में मुफ़्त के साथ गुणवत्तापूर्ण शिक्षा भी शामिल है। इसके बिना शिक्षा का कोई मतलब नहीं है। बीएड अभ्यर्थियों में कक्षा 1 से 5 तक के बच्चों को पढ़ाने के लिए ज़रूरी कुशलता और पहुँच नहीं है। वे बच्चों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा नहीं दे पाएंगे इसलिए वे इसके लिए अयोग्य माने जाएंगे।"

आपस में नहीं, सबके रोज़गार की गारण्टी के लिए लड़ो!

आपस में लड़ने से पहले इस बात पर ध्यान देने कि ज़रूरत है कि फ़ैसले में सर्वोच्च न्यायालय ने मुफ़्त और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की बात तो की है लेकिन ये कैसे हासिल किया जायेगा यह नहीं बताया। आज शिक्षा का तीव्र बाज़ारीकरण हो रहा है। शिक्षकों के पदों को लगातार घटाया जा रहा है। नयी शिक्षा नीति-2020 भेदभावपूर्ण दोहरी शिक्षा प्रणाली के लिए ज़िम्मेदार महँगे निजी स्कूलों के शोषणकारी जाल को न सिर्फ़ बनाये रखती है बल्कि उसे और ज़्यादा मज़बूत करती है। शिक्षा को सबके लिए अनिवार्य और निःशुल्क करने की जगह पीपीपी मॉडल के तहत इसे भी मुनाफ़े के मातहत कर दिया गया है। जहाँ पुरानी शिक्षा नीति में विद्यालयों की संख्या पहुँच के हिसाब से तय किए जाने का प्रावधान था उसे नयी शिक्षा नीति में बच्चों की संख्या के हिसाब से कर दिया गया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020, 50 से कम छात्रों वाले सरकारी स्कूलों का विलय करने या बन्द करने की भी सिफ़ारिश करती है। इसका असर भी दिखना शुरू हो गया है। 2020 में भाजपा की डबल इंजन सरकार ने उड़ीसा में कम नामांकन वाले 11,517 विद्यालयों के विलय की पहल की थी। इसी प्रकार 2021 में हरियाणा सरकार ने 743 प्राथमिक और 314 उच्च प्राथमिक विद्यालयों को बन्द करने के लिए हरी झण्डी दिखा दिया था। कमोबेश यही स्थिति देश के अन्य राज्यों की भी है। इतना ही नहीं इस शिक्षा नीति के मुताबिक़ 3-6 साल के बच्चों को 'अर्ली चाइल्डहुड केयर एण्ड एजुकेशन' दी जायेगी लेकिन इसके लिए नियमित अध्यापकों की भर्ती नहीं की जाएगी बल्कि इन्हें आँगनबाड़ी केन्द्रों और स्वयंसेवकों के भरोसे चलाया जायेगा।

शिक्षा मन्त्रालय के स्कूली शिक्षा और साक्षरता विभाग के मुताबिक़ देश भर में 10 लाख 32 हज़ार से ज़्यादा संचालित होने वाले विद्यालयों में से लगभग 68 फ़ीसदी सरकारों द्वारा संचालित हो रहे हैं। वहीं दूसरी ओर देश भर में सरकारी

शिक्षकों की संख्या कुल शिक्षकों की संख्या का केवल 50 फ़ीसदी है। अगर सर्वोच्च न्यायालय सचमुच निःशुल्क और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लिए चिन्तित है तो इसके लिए सबसे पहले निजी विद्यालयों की लूट पर रोक लगाने की ज़रूरत है। आज की तारीख़ में संचालित निजी विद्यालयों के राष्ट्रीयकरण और शिक्षकों के पुराने मानकों के मुताबिक़ ख़ाली पड़े पदों पर भर्ती करने भर से लगभग 39 लाख शिक्षकों की ज़रूरत होगी। इसके अलावा प्राथमिक शिक्षकों से लिए जाने वाले अन्य कामों पर रोक लगाई जाय और इसके जगह पर भर्तियाँ की जाय तो इस प्रक्रिया में भी लाखों पद सृजित होंगे। लेकिन सच्चाई यह है कि मुफ़्त और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा केवल लफ़्फ़ाज़ी है और इसकी आड़ में बेरोज़गारी की मार झेल रहे छात्रों-नौजवानों को आपस में उलझा कर सबके लिए रोज़गार गारण्टी के सवाल को नेपथ्य में धकेला जा रहा है।

अब इन आँकड़ों की रोशनी में सोचिए! जब सरकारी प्राथमिक विद्यालय रहेंगे ही नहीं तो क्या सारे बीटीसी वालों को नौकरी दी जा सकती है? या अगर बीएड अभ्यर्थियों को योग्य मान भी लिया जाय तो सभी को रोज़गार दिया जा सकता है? दरअसल आज नौकरियाँ ही तेज़ी से सिमटती जा रही हैं। निजीकरण छात्रों-नौजवानों के भविष्य पर भारी पड़ता जा रहा है। रेलवे, बिजली, कोल, संचार आदि सभी विभागों को तेज़ी से धनपशुओं के हवाले किया जा रहा है। अगर इस स्थिति के ख़िलाफ़ कोई देशव्यापी जुझारू आन्दोलन नहीं खड़ा होगा तो यह स्थिति और ख़राब होगी। इसलिए ज़रूरी है कि आपस में लड़ने की जगह रोज़गार गारण्टी की लड़ाई के लिए कमर कसी जाय।

•

(पेज 33 का शेष)

यह उसने क्या किया था? उसने एक पशु पाला था, जिसके हृदय में मनुष्यों की-सी वेदना थी। घृणा से विक्षुब्ध होकर चमेली ने कहा, 'क्यों रे तूने चोरी की है?'

गूँगा चुप हो गया। उसने अपना सिर झुका लिया। चमेली एक बार क्रोध से काँप उठी, देर तक उसकी ओर घूरती रही। सोचा, 'मारने से यह ठीक नहीं हो सकता। अपराध को स्वीकार कराके दण्ड दे देना ही शायद कुछ असर करे। और फिर कौन मेरा अपना है। रहना हो तो ठीक से रहे, नहीं तो फिर जाकर सड़क पर कुत्तों की तरह जूठन पर ज़िन्दगी बिताये, दर-दर अपमानित और लांछित...।'

आगे बढ़कर गूँगे का हाथ पकड़ लिया और द्वार की ओर इशारा करके दिखाया, 'निकल जा!'

गूँगा जैसे समझा नहीं। बड़ी-बड़ी आँखों को फाड़े देखता रहा। कुछ कहने को शायद एक बार होठ भी खुले, किन्तु कोई स्वर नहीं निकला। चमेली वैसे ही कठोर रही। अबके मुँह से भी साथ-साथ, 'जाओ निकल जाओ। ढंग से काम नहीं करना है, तो तुम्हारा यहाँ कोई काम नहीं। नौकर की तरह रहना है, रहो, नहीं बाहर जाओ। यहाँ तुम्हारे नखरे कोई नहीं उठा सकता। किसी को भी इतनी फ़ुर्सत नहीं है। समझे?'

और फिर चमेली आवेश में आकर चिल्ला उठी, 'मक्कार, बदमाश! पहले कहता था, भीख नहीं माँगता, और सबसे भीख माँगता है। रोज-रोज भाग जाता है, पत्ते चाटने की आदत पड़ गई है। कुत्ते की दुम क्या कभी सीधी होगी? नहीं। नहीं रखना है हमें, जा, तू इसी वक़्त निकल जा...।'

किन्तु वह क्षोभ, वह क्रोध, सब उसके सामने निष्फल हो गए, जैसे मन्दिर की मूर्ति कोई उत्तर नहीं देती, वैसे ही उसने भी कुछ नहीं कहा। केवल इतना समझ सका कि मालकिन नाराज़ है और निकल जाने को कह रही है। इसी पर उसे अचरज और अविश्वास हो रहा है।

चमेली अपने-आप लज्जित हो गई। कैसी मूर्खा है वह! बहरे से जाने क्या-क्या कह रही थी? वह क्या कुछ सुनता है?

हाथ पकड़कर ज़ोर से एक झटका दिया और उसे दरवाज़े के बाहर धकेलकर निकाल दिया। गूँगा धीरे-धीरे चला गया। चमेली देखती रही।

क़रीब घण्टे भर बाद शकुन्तला और बसन्ता दोनों चिल्ला उठे, 'अम्मा! अम्मा!!'

'क्या है?' चमेली ने ऊपर ही से पूछा।

'गूँगा...' बसन्ता ने कहा। किन्तु कहने के पहले ही नीचे उतरकर देखा, 'गूँगा ख़ून से भीग रहा था। उसका सिर फट गया था। वह सड़क के लड़कों से पिटकर आया था, क्योंकि गूँगा होने के नाते वह उनसे दबना नहीं चाहता था...दरवाज़े की दहलीज पर सिर रखकर वह कुत्ते की तरह चिल्ला रहा था...।

और चमेली चुपचाप देखती रही, देखती रही कि इस मूक अवसाद में युगों का हाहाकार भरकर गूँज रहा है।

और गूँगे...अनेक-अनेक हो, संसार में भिन्न-भिन्न रूपों में छा गये हैं, जो कहना चाहते हैं, पर कह नहीं पाते। जिनके हृदय की प्रतिहिंसा न्याय और अन्याय को परख कर भी अत्याचार को चुनौती नहीं दे सकती, क्योंकि बोलने के लिए स्वर होकर भी-स्वर में अर्थ नहीं है, क्योंकि वे असमर्थ हैं।

और चमेली सोचती है, आज दिन ऐसा कौन है जो गूँगा नहीं है। किसका हृदय समाज, राष्ट्र, धर्म और व्यक्ति के प्रति विद्वेष से, घृणा से नहीं छटपटाता, किन्तु फिर भी कृत्रिम सुख की छलना अपने जालों में उसे नहीं फाँस देती-क्योंकि वह स्नेह चाहता है, समानता चाहता है!

शिक्षा जगत

परिसरों में कम होता जनवादी स्पेस और बढ़ता प्रशासनिक दमन

प्रांजल

अभी पिछले दिनों प्रशासनिक लापरवाही के कारण एक छात्र की मौत की वजह से इलाहाबाद विश्वविद्यालय सुर्ख़ियों में रहा। इस घटना के बाद सुरक्षा और शान्ति के नाम पर परिसर में बचे-खुचे जनवादी स्पेस पर भी प्रशासनिक बुलडोज़र चलाया जा रहा है। अभी हाल ही में प्रशासन द्वारा अनुशासनात्मक कार्रवाई का हवाला देते हुये एक निरंकुश फ़रमान जारी हुआ है जिसके ज़रिये परिसर में बिना अनुमति छात्र गतिविधियों पर प्रत्यक्ष तौर पर रोक लगा दी गयी है।

विश्वविद्यालय परिसर में किसी भी प्रकार की छात्र गतिविधि जैसे सांस्कृतिक कार्यक्रम, अध्ययन चक्र, विचार गोष्ठी, यहाँ तक कि विरोध प्रदर्शन तक के लिए प्रॉक्टर की पूर्व अनुमति को अनिवार्य कर दिया गया है। शाम को पाँच बजे के बाद विश्वविद्यालय परिसर में छात्रों के प्रवेश पर रोक लगी हुई है। परिचय-पत्र की जाँच के नाम पर विद्यार्थियों को परेशान किया जा रहा है। परिसर को ख़ाकी वर्दी के गश्त का अड्डा बना दिया गया है। पिछले दिनों सुरक्षाकर्मियों द्वारा छात्रों पर गोली तक चलायी गयी। विश्वविद्यालय के इतिहास में ऐसा पहली बार हुआ है। छात्रों द्वारा वाजिब माँगों को लेकर प्रदर्शन करने पर निलम्बन-निष्कासन और जेल भेजना आम परिघटना बनती जा रही है।

विश्वविद्यालय में जो जनवादी अधिकार लम्बे संघर्ष और अकूत क़ुर्बानियों की क़ीमत पर हासिल हुये थे उन्हें वर्तमान दौर में अभूतपूर्व गति से छीना जा रहा है। विश्वविद्यालय में व्यापक छात्र आबादी का कोई जनवादी प्रतिनिधित्व न होने के कारण क्या पढ़ाया जायेगा, कैसे पढ़ाया जायेगा, शिक्षक भर्ती किस प्रकार होगी, फ़ीस आदि की व्यवस्था जैसे मसलों पर फ़ैसला लेने में छात्रों की कोई भूमिका नहीं है। छात्रों के भविष्य से जुड़े सारे फ़ैसले अब सत्ताधारी, विश्वविद्यालय प्रशासन और शासक वर्ग की चाटुकारिता में लगे विचारक और राजनीतिज्ञ ले रहे हैं। छात्रसंघ जैसी संस्था की ग़ैरमौजूदगी की वजह से विश्वविद्यालय प्रशासन खुले तौर पर मनमानी कर रहा है और विश्वविद्यालय को बोर्डिंग स्कूल में बदल देने पर आमादा है जहाँ तर्कणा, वैज्ञानिकता और प्रतिरोध की संस्कृति से रिक्त बिना कोई सवाल किये केवल हुक़्म बजाने वाले आज्ञाकारी रोबोट तैयार हों। कमोबेश यही स्थिति देश के अन्य विश्वविद्यालयों की भी है। देश के जिन इने-गिने विश्वविद्यालयों में छात्रसंघ है भी वहाँ भी इसे लिंगदोह कमीशन की सिफ़ारिशों के ज़रिये बेजान बना दिया गया है।

लोकतन्त्र में चुनने और चुने जाने का अधिकार एक बुनियादी अधिकार है। लेकिन गुण्डागर्दी और अराजकता को रोकने के नाम पर विश्वविद्यालय प्रशासन ने छात्रसंघ पर प्रतिबन्ध लगा दिया है। मीडिया और अख़बारों के ज़रिये छात्रों और आम आबादी के बीच इस कुतर्क के द्वारा ऐसी धुन्ध पैदा की जाती है कि बहुत से छात्र और नागरिक छात्र संघ जैसी संस्थाओं के ख़िलाफ़ हो जाते हैं और वो प्रशासन के नज़रिये से सोचने लगते हैं। यह सोचने वाली बात है कि अगर गुण्डागर्दी और अराजकता के बहाने छात्रसंघ पर प्रतिबन्ध लगाना उचित है तब तो इसी तर्क को आगे बढ़ाते हुए देश की संसद और विधानसभाओं, प्रशासनिक संस्थाओं आदि पर भी ताला जड़ देना चाहिए क्योंकि इन सभी संस्थाओं में गाली-गलौच, गुण्डागर्दी, भ्रष्टाचार और अपराध का बोलबाला है। लेकिन इन पर कभी प्रतिबन्ध नहीं लगाया जायेगा क्योंकि वह शासक वर्ग का अड्डा है। विश्वविद्यालय में अराजकता कौन फैलाता है यह किसी से छुपा नहीं है। तमाम चुनावबाज़ पार्टियों के छात्र संगठन कैम्पस को गुण्डागर्दी, धनबल-बाहुबल के नंगे प्रदर्शन के अड्डे और एमपी-एमएलए बनाने के ट्रेनिंग सेण्टर के तौर पर इस्तेमाल करते हैं। पिछले दिनों जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय से लेकर लखनऊ विश्वविद्यालय में अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद का जो नंगा नाच हुआ वो किसी से छुपा नहीं है। देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों में संघ के इस बगलबच्चा संगठन द्वारा उत्पात मचाया जा रहा है लेकिन विश्वविद्यालय प्रशासन द्वारा इन पर कभी रोक लगाने की कोशिश नहीं जाती है। निश्चित तौर पर हमारा मानना है कि कैम्पस में व्याप्त अराजकता और गुण्डागर्दी पर रोक लगनी चाहिए न कि छात्रों के जनवादी अधिकार पर! गुण्डागर्दी और अराजकता फैलाने वालों पर रोक लगनी चाहिये न कि छात्र संघ पर!

कैम्पसों में छात्रों के जनवादी अधिकारों पर बढ़ता हमला कोई आकस्मिक घटना नहीं है। वास्तव में 1990-91 में उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों के लागू होने के बाद से ही शिक्षा को बाज़ार के हवाले किया जा रहा है। शिक्षा जगत को मुट्ठीभर धनपशुओं की लूट का अड्डा बनाया जा रहा है। आज अज़ीम प्रेमजी, गोयनका और अब मुकेश अम्बानी जैसे बड़े कॉरपोरेट भी शिक्षा के क्षेत्र में पूँजी निवेश कर रहे हैं। पिछले तीन दशकों में पब्लिक-प्राइवेट पार्टनरशिप के तहत शिक्षा को पूरी तरह से तबाह और बर्बाद करके इसे निजी स्कूलों-विश्वविद्यालयों और बड़े-बड़े फ़्रेन्चाइजियों के हाथ में दे दिया गया है। शिक्षा पर सरकारी ख़र्च साल दर साल कम होता गया जिसे इस आँकड़े से समझा जा सकता है कि 1990-91 से 2023-24 के बीच शिक्षा पर केन्द्र सरकार द्वारा ख़र्च जीडीपी के 1.4 फ़ीसदी से घटकर 0.37 फ़ीसदी रह गया है। और अब रही-सही कसर नयी शिक्षा नीति-2020 ने पूरी कर दी है, जिसके मुताबिक़ सरकार द्वारा विश्वविद्यालयों को दिया जाने वाला अनुदान रोक दिया जायेगा। जिसके बाद विश्वविद्यालय को अपने ख़र्च ख़ुद जुटाने होंगे। इसका असर भी स्पष्ट रूप में दिखने लगा है। अभी हाल ही में इलाहाबाद विश्वविद्यालय, गोरखपुर विश्वविद्यालय, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय आदि विश्वविद्यालयों में कई गुना फ़ीस बढ़ा दी गयी। विश्वविद्यालयों में नियमित कोर्स की जगह स्ववित्तपोषित कोर्स लाकर शिक्षा तन्त्र को देशी-विदेशी शिक्षा माफ़ियाओं को सौंपा जा रहा है। जिसकी वजह से आम घरों से आने वाले छात्रों के लिए विश्वविद्यालय तक पहुँच पाना मुश्किल हो गया है।

लोकतन्त्र और जनवाद का ढिंढोरा पीटने वाली नयी शिक्षा नीति में इस बात का कहीं ज़िक्र तक नहीं है कि विश्वविद्यालयों में छात्रों का प्रतिनिधित्व करने वाला छात्रसंघ होगा या नहीं। छात्रों का प्रशासन और अध्यापकों के साथ सम्बन्ध कैसा होगा, इसकी कोई चर्चा नहीं की गयी है। बल्कि बोर्ड ऑफ़ गवर्नर्स (बीओजी) का एक नया तन्त्र सुझाया गया है जो विश्वविद्यालय समुदाय के प्रति किसी भी रूप में जवाबदेह नहीं होगा। बीओजी के पास फ़ीस पर फ़ैसला करने, उच्च शिक्षा संस्थान (एचईआई) के प्रमुख सहित नियुक्तियाँ करने और शासन के बारे में निर्णय लेने का अधिकार होगा। शासन का यह मॉडल स्वायत्तता और अकादमिक उत्कृष्टता को नष्ट कर देगा। यह शिक्षा नीति शिक्षण-संस्थानों को शैक्षिक-प्रशासनिक और वित्तीय स्वायत्तता देने की बात करता है लेकिन दूसरी तरफ़ प्रशासनिक केन्द्रीकरण का पुरज़ोर समर्थन भी करता है। इस तरह यह दस्तावेज़ कैम्पसों के बचे-खुचे जनवादी स्पेस का भी गला घोंट देता है।

ऐसे समय में जब दमनकारी शक्तियाँ अपने उफान पर हैं, अगर छात्र-नौजवान छात्रसंघ जैसी संस्थाओं और अपने जनवादी अधिकारों को बचाने के लिए एक जुझारू संघर्ष की शुरुआत नहीं करते तो विश्वविद्यालय प्रशासन ख़ुद सबसे बड़ा गुण्डा बन जायेगा (और एक हद तक बन भी चुका है)। छात्रों-युवाओं को भयंकर रूप से बढ़ती फ़ीसों और घटती सीटों का सामना करना पड़ेगा। यही नहीं, कैम्पस में छात्रावासों की सुविधा, कैण्टीन, मेस, मेडिकल सुविधा, साइकल स्टैण्ड, शिक्षकों की कमी, लड़कियों के लिए पिंक टॉयलेट, पिंक हॉल आदि मामलों में जो भयंकर स्थिति है उसके ख़िलाफ़ छात्र-युवा चूँ तक भी नहीं कर पाएंगे। और ये सब कोई दूर भविष्य की बात नहीं है बल्कि हमारे सामने घट रहा है।

विश्वविद्यालय प्रशासन की तानाशाही के ख़िलाफ़ देश के विभिन्न हिस्सों में छात्रों-युवाओं में व्यापक असन्तोष है और न्यायप्रिय छात्र-युवा इसका विरोध भी कर रहे हैं। लेकिन छात्रों की एक आबादी ऐसी भी है जो विराजनीतिकरण की राजनीति का शिकार है। यह आबादी इन मुद्दों से प्रभावित होने के बावजूद भी प्रतिरोध के मामले में तटस्थ है। लेकिन उनकी तटस्थता उन्हें इस दमन से सुरक्षित नहीं रख सकेगी। छात्रों का जो धड़ा इस तानाशाही के ख़िलाफ़ लड़ रहा है उसमें से ज़्यादातर भयंकर राजनीतिक भटकाव के शिकार हैं। साथ ही साथ यह पूरा आन्दोलन बिखराव का शिकार भी है जिसकी वजह से संघर्षरत युवाओं की बड़ी आबादी देर-सवेर निराशा की शिकार होकर निष्क्रिय हो जाती है और दमन को अपनी नियति समझ लेती है।

ऐसे में आज इस तानाशाही का जवाब केवल क्रान्तिकारी विचारों से लैस और अपने दौर की राजनीतिक-सामाजिक परिस्थितियों की गहरी समझ रखने वाले छात्रों-युवाओं के जुझारू आन्दोलन के ज़रिये ही दिया जा सकता है। हमे एक बात और भी स्पष्ट समझ लेनी चाहिए कि परिसरों में घटते लोकतान्त्रिक मूल्यों की असली वजह वर्तमान सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक व्यवस्था का लाइलाज आन्तरिक संकट है। मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था अपने उत्तरोत्तर विकास में आर्थिक संकट को पुनरुत्पादित करती रहेगी। इस प्रक्रिया में पूरे समाज में जनवादी स्पेस सिकुड़ता ही जायेगा। इसलिए अगर हम अपने संघर्ष को केवल परिसरों तक सीमित रखते है तो तमाम तात्कालिक जीतों के बावजूद अन्ततोगत्वा जीते गये सारे अधिकार हमसे छीन लिए जायेंगे। इसलिए हमें अपने संघर्ष को देश की व्यापक आबादी के मुक्ति के लिए चल रहे संघर्ष से भी जोड़ना होगा।

•

रॉके डॉल्टन की कविताएँ

निम्न-पूँजीपति वर्ग
(उसकी एक अभिव्यक्ति के बारे में)

वे जो
सबसे बेहतर स्थितियों में
क्रान्ति करना चाहते हैं
इतिहास के लिये, तर्क के लिये
विज्ञान और प्रकृति के लिये
आगामी वर्ष और भविष्य की क़िताबों के लिये,
बहस-मुबाहिसों के लिये
और अख़बारों में छपने तक के लिये भी
सीधे तौर पर न तो
भूखों की भूख मिटाने के लिये
और शोषितों का शोषण मिटाने के लिये।

इसलिये, यह स्वाभाविक ही है कि
क्रान्तिकारी व्यवहार में
वे अपनी पुस्तकें और पत्रिकाएँ ताक पर रख देते हैं
इतिहास, नैतिकता, मानवतावाद, तर्क
और विज्ञान के फ़ैसले के सामने
और अपने आख़िरी शब्द देने से मुकर जाते हैं
भूखों और शोषितों को
जिनके पास दहशत का अपना इतिहास है
और अपने अटल तर्क
और होंगी जिनके पास
अपनी क़िताबें
उनका अपना विज्ञान,
प्रकृति
और
भविष्य!!

प्रेम की तीसरी कविता

जो भी तुमसे कहता है हमारा प्रेम असाधारण है
क्योंकि यह असाधारण परिस्थितियों में पैदा हुआ
उससे कहो हम अभी संघर्ष कर रहे हैं
ताकि हमारे जैसा प्रेम
(युद्ध में साथियों के बीच का प्रेम)

अल सल्वाडोर में
सबसे साधारण और सहज
सबसे बेमिसाल
बन जाये!

सिरदर्द

कम्युनिस्ट होना सुन्दर है,
हालाँकि यह कई सिरदर्द पैदा करता है।
कम्युनिज़्म का सिरदर्द
तुम देखोगे कि
ऐतिहासिक माना जाता है,
यानी
यह दर्द हरने वाली गोलियों के लिये नहीं
बल्कि सिर्फ़ धरती पर स्वर्ग की प्राप्ति के लिये उपजता है।

तुम्हें पता है, यह बम है!
पूँजीवाद में जब हमारा सिरदर्द होता है
वे हमारा सिर ही कलम कर देते है!!

क्रान्तिकारी संघर्ष में, सिर एक धीमी प्रक्रिया में फटने वाला बम है।
समाजवाद में हम अपने सिरदर्द की योजना बनाते हैं
जो उसे नष्ट नहीं करता
बल्कि इसके विपरीत
कम्युनिज़्म
अन्य चीजों में
सूर्य से बड़ा एक एस्पिरिन होगा!

रॉके डाल्टन
(अनुवाद : प्रियम्वदा)

•

बिरादराने वतन के नाम क़ब्र के किनारे से पैग़ाम

काकोरी ऐक्शन के शहीद अशफ़ाक़ उल्ला खाँ के यौमे-पैदाइश (22 अक्टूबर) पर उनका अन्तिम पैग़ाम

बिरादराने वतन की ख़िदमत में उनके उस भाई का सलाम पहुँचे जो उनकी इज़्ज़त व नामूसे वतन की ख़ातिर फैज़ाबाद जेल में क़ुर्बान हो गया। आज जबकि मैं वह पैग़ाम बिरादराने वतन को भेज रहा हूँ, इसके बाद मुझको तीन दिन और चार रातें और गुजारनी हैं और फिर मैं हूँगा और आग़ोश-ए-मादरेवतन होगा। हम लोगों पर जो जुर्म लगाये गये थे वह इस सूरत में पब्लिक में लाये गये कि हमको बहुत से लोग जो ग़ैर-तालीमयाफ़्ता या हुकूमत के दस्तरख्वान की पसेखुर्दा (बची हुई) हड्डियाँ चचोड़नेवाले थे, डाकू, ख़ूनी क़ातिल के लक़ब से पुकारा किये। मैं आज इस फाँसी की कोठरी में बैठा हुआ भी ख़ुश हूँ और अपने उन भाइयों का शुक्रिया अदा करता हूँ। और कहूँगा-

अशफ़ाक़ उल्ला खाँ
22 अक्टूबर 1900 - 19 दिसम्बर 1927

मर मिटा आप पे कौन आपने यह भी न सुना,
आपकी जान से दूर आप से शिकवा है मुझे।

ख़ैर, यह तुम्हारा फ़ेल है कि हमारी क़ुर्बानियों को क़बूल न करो और यह हमारा फ़र्ज़ है कि तुम बार-बार ठुकराओ मगर हम तुम्हारा ही दम भरे जायेंगे। बिरादराने वतन, मैं उसी पाक व मुक़द्दस वतन ही की कसम खाकर कहूँगा कि हम नंगे नामूस-ए-वतन पर क़ुर्बान हो गये। क्या यह शर्म की बात नहीं थी कि हम अपनी आँखों से देखते कि नित नये मज़ालिम हो रहे हैं और ग़रीब हिन्दुस्तानी हर हिस्सा-ए-मुल्क और खित्त-ए-दुनिया में ज़लील और रुस्वा हो रहे हैं और कहीं न ठिकाना है न सहारा। क़िस्सा मुख़्तसर ये कि हमारा वतन भी हमारा नहीं। हम पर टैक्स की भरमार, हमारी माली हालत का रोज़बरोज़ गिरते जाना, 33 करोड़ बहादुर हिन्दुस्तानी हिन्दू और मुसलमान भेड़-बकरियों की मानिन्द बनाये गये। हमारे गोरे आका हमें ठोकरें मार दें तो बाज़-पुर्स न हो। जनरल डायर जलियान वाला बाग को नमूना-ए-हशर बना दें। हमारी माताओं की बेइज़्ज़ती करें। हमारे बूढ़ों और बच्चों पर बम के गोले गनमशीनों की गोलियाँ बरसायें और हर नया दिन हमारे लिए नयी मुसीबतें लेकर आये। फिर भी हम मस्ते-बादए-ग़फ़लत रहें। और ऐश-ओ-इशरत में अय्यामे जवानी गुजार देते। यह ख़याल करके-

जनूने हुब्बे वतन का मज़ा शबाब में है,
लहू में फिर यह रवानी रहे रहे न रहे।

जो भी किया, भला किया, आज हम नाकाम रहे डाकू हैं। कामयाब होते मुहिब-ए-वतन के पाक लक़ब से पुकारे जाते। और जो आज हम पर झूठी गवाहियाँ दे गये, हमारे नाम के जयकारे लगाते-

बहे बहरे फ़ना में जल्द यारब लाश बिस्मिल की,
कि भूखी मछलियाँ हैं जौहरे शमशीरे क़ातिल की।

आह! क्या ऐसे दौर की ज़िन्दगी प्यारी ख़याल की जा सकती है? जबकि हमारे ही गिरोहे-सियासी में ख़लफ़िशार मचा है। कोई तबलीग़ का दिलदादा है, तो कोई शुद्धी पर मर मिटने को (बाइसे-निजात) समझ रहा है। मुझे तो रह-रहकर इन दिमाग़ों और अक़्लों पर तरस आ रहा है जो कि बेहतरीन दिमाग़ हैं और माहरीने सियासत हैं। काश कि वह आज़ादी-ए-मिस्र की जद्दोजहद, एहरारान मिस्र के कारनामे और बर्तानवी सियासी चालें स्टडी कर लें और फिर हमारे हिन्दुस्तान की मौजूदा हालत से मुक़ाबिला व मवाज़ना करें क्या ठीक वही हाल इस वक़्त नहीं है। गवर्नमेण्ट के ख़ुफ़िया एजेण्ट प्रोपेगण्डा मज़हबी बुनियाद पर फैला रहे हैं। इन लोगों का मक़सद मज़हब की हिफ़ाज़त या तरक़्क़ी नहीं है बल्कि चलती गाड़ी में रोड़े अटकाना है। मेरे पास वक़्त नहीं और न मौका कि सब कच्चा चिट्ठा खोलकर रख देता जो मुझे अय्यामे फ़रारी में और उसके बाद मालूम हुआ है। यहाँ तक मुझे मालूम है कि मौलवी नियामतुल्ला कादियानी कौन था कि काबुल में संगसार किया गया था। वह ब्रिटिश एजेण्ट था जिसके पास हमारे करम-फ़रमा खानबहादुर तसदुक हुसैन साहब, डिप्टी सुपरिटेण्डेण्ट सीआईडी, गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया पैग़ाम लेकर गये थे मगर बेदारमग़ज़ हुकूमत काबुल के इलाज़ जल्द कर दिया और मर्ज़ को फैलने न दिया। मैं अपने हिन्दुओं और मुसलमान भाइयों को

बता देना चाहता हूँ कि सब ढोंग है जो सीआईडी के ख़ुफ़िया खजाने के रुपए से रचा गया है। मैं मर रहा हूँ और वतन पर मर रहा हूँ। मेरा फ़र्ज़ है कि हर नेकोबद बात भाइयों तक पहुँचा दूं। मानना न मानना उनका काम है। मुल्क के बड़े-बड़े लोग इससे बचे हुए नहीं हैं। पर अवाम को आँखें खोलकर इत्तवा करना चाहिए। भाइयो! तुम्हारी खानाजंगी तुम्हारी आपस में फूट, तुम दोनों में किसी के भी सूदमन्द साबित न होगी। यह ग़ैरमुमकिन है कि 7 करोड़ मुसलमान बना लिए जायें। मगर हाँ यह आसान है और बिलकुल आसान है कि यह सब मिलकर शुद्ध हो जायें और वैसे ही यह भी महमल सी बात है कि 22 करोड़ हिन्दू मुसलमान ग़ुलामी का तौक गले में डाल लें। ये वह क़ौम जिसका कोई क़ौमी झण्डा नहीं - ऐ वह कि तेरा वतन मेरा वतन नहीं - ऐ वह कि तू दूसरों की तरफ़ हाथ फैलाये हुए रहम की दरख़्वास्त पर नज़र रखने वाली बेकस क़ौम तेरी अपनी ग़लतियों का यही नतीजा है कि आज तू ग़ुलाम है और फिर भी वही गलतियाँ कर रही है कि आनेवाली नस्लों के लिए धब्बा ग़ुलामी का छोड़ जाएगी कि जो भी सरज़मीने हिन्द पर क़दम रखेगा, ग़ुलामी में रखेगा और ग़ुलाम बनायेगा। ऐ ख़ुदावन्दे क़ुद्दूस, क्या कोई ऐसा सवेरा नहीं आयेगा कि जिस सुबह को तेरा आफ़ताब आज़ाद हिन्दुस्तान पर चमके? और फ़िज़ा-ए-हिन्द आज़ादी के नारों से गूँज उठे? कांग्रेसवाले हों कि सौराजिस्ट, तबलीग़वाले हों कि शुद्धीवाले, कम्युनिस्ट हों कि रिवोलूशनरी, अकाली हों कि बंगाली। मेरा पयाम हर फ़रज़न्देवतन को पहुँचे। मैं हर शख़्स को उसकी इज़्ज़त व मज़हब का वास्ता देता हूँ। अगर वह मज़हब का क़ायल नहीं तो उसके ज़मीर को और जिसको भी वह मानता हो, अपील करता हूँ कि हम काकोरी केस के मर जानेवाले नौजवानों पर तरस खाओ। और फिर हिन्दुस्तान को सन् 20 व 21 वाला हिन्दुस्तान बना दो। फिर अहमदाबाद कांग्रेस जैसा इत्तिहाद व इत्तिफ़ाक़ का नज़ारा सामने हो बल्कि उससे बढ़कर हो और मुकम्मल आज़ादी का जल्द अज-जल्द ऐलान करके इन गोरे आकाओं को हटा दो कि ये काले अब केचुली उतार चुके हैं और अब वह किसी मन्त्र से बस में न होंगे- तबलीग़ व शुद्धी वालो ख़ुदारा आँख खोलो, कहाँ थे और कहाँ पहुँच गये, अपनी-अपनी शान ख़त्म करो, सोचो तो मज़हब में जबरदस्ती इख़्तिलाफ़-ए-राय पर जंग, एक काम नामुकम्मल छोड़कर दूसरी तरफ़ रुजू हो गये। आज कौन ऐसा हिन्दू या मुसलमान है जो मज़हबी आज़ादी इतनी रखता है कि जितना उसका हक़ है। क्या ग़ुलाम क़ौम का कोई मज़हब होता है? तुम अपने मज़हब का सुधार क्या कर सकते हो तुम ख़ुदा की इबादत पुरसुकून तरीक़े पर करो। तुम ईश्वर का ध्यान ख़ामोशी से करो और दोनों मिलकर इस सफ़ेद भूत को मन्त्र से जन्त्र से उतार भगाओ। इसी की यह सारी कार्यवाही है। जब यह भूत उतर जायेगा, हमारी आँखें खुल जायेंगी। आओ हमारी भी सुनो, पहले हिन्दुस्तान को आज़ाद करो, फिर कुछ और सोचना, ख़ुदा ने जिसके लिए जो रास्ता मुन्तख़ब कर दिया है, वह उसी पर रहेगा। तुम किसी को भी नहीं हटा सकते। आपस में मिल-जुलकर रहो और मुत्तहिद हो जाओ, नहीं तो सारे हिन्दुस्तान की बदबख़्ती का बार तुम्हारी गर्दन पर है और ग़ुलामी का बाइस तुम हो। कम्युनिस्ट ग्रुप से अशफ़ाक़ की गुज़ारिश है कि तुम इस ग़ैर मुल्क की तहरीक़ को लेकर जब हिन्दुस्तान में आये हो तो तुम अपने को ग़ैरमुल्की ही तसव्वुर करते हो, देशी चीजों से नफ़रत, विदेशी पोशाक और तर्जेमआशरत के दिलदादा हो, इससे काम नहीं चलेगा। अपने असली रंग में आ जाओ। देश के लिए मरो, देश के लिए जियो। मैं तुमसे काफ़ी तौर से मुत्तफ़िक़ हूँ और कहूँगा कि मेरा दिल ग़रीब किसानों के लिए और दुखिया मज़दूरों के लिए हमेशा दुखी रहा है। मैं अपने अय्यामे फ़रारी में भी अकसर इनकी हालत देखकर रोया किया हूँ क्योंकि मुझे इनके साथ दिन गुज़ारने का मौक़ा मिला है। मुझसे पूछो तो मैं कहूँगा कि मेरा बस हो तो मैं दुनिया की हर मुमकिन चीज़ इनके लिए वक़्फ़ कर दूँ। हमारे शहरों की रौनक इनके दम से है। हमारे कारख़ाने उनकी वजह से आबाद और काम कर रहे हैं। हमारे पम्पों से इनके ही हाथ पानी निकालते हैं, गर्ज कि दुनिया का हर एक काम इनकी वजह से हुआ करता है। ग़रीब किसान बरसात के मूसलाधार पानी और जेठ बैसाख की तपती दोपहर में भी खेतों पर जमा होते हैं और जंगल में मँडराते हुए हमारी ख़ुराक का सामान पैदा करते हैं। यह बिलकुल सच है कि वह जो पैदा करते हैं जो वह बनाते हैं उनमें उनका हिस्सा नहीं होता, हमेशा दुखी और मफ़लूक-उल-हाल रहते हैं। मैं इत्तिफ़ाक़ करता हूँ कि इन तमाम बातों के ज़िम्मेदार हमारे गोरे आका और उनके एजेण्ट हैं मगर इनका इलाज़ क्या है कि उनको उस हालत पर ले आयें कि वह महसूस करने लगें कि वह क्या हैं? इसका वाहिद ज़रिया यह है कि तुम उन जैसी वज़ा - कित्ता इख़्तियार करो और जेण्टिलमैनी छोड़कर देहात का चक्कर लगाओ। कारखानों में डेरे डालो और उनकी हालत स्टडी करो और उनमें एहसास पैदा करो। तुम कैथरीन, ग्राण्ड मदर ऑफ रशिया की सवानेहउम्री पढ़ो और वहाँ के नौजवानों की क़ुर्बानियाँ देखो। तुम कालर टाई और उम्दा सूट पहनकर लीडर ज़रूर बन सकते हो, मगर किसानों और मजदूरों के लिए फ़ायदेमन्द साबित नहीं हो सकते। दीगर पोलिटिकल जमाअतों से मुत्तहिद होकर काम करो। और अपनी माद्दापरस्ती से किनारा करो कि यह फ़िज़ूल है जो तुम्हें दूसरी जमाअतों से अलग किये हुए हैं। मेरे दिल में तुम्हारी इज़्ज़त है और मैं मरते हुए भी तुम्हारे सयासी मक़सद से बिलकुल मुत्तफ़िक़ हूँ। मैं हिन्दुस्तान की ऐसी आज़ादी का ख़्वाहिशमन्द था जिसमें ग़रीब ख़ुश और आराम से रहते और सब बराबर होते। ख़ुदा मेरे बाद वह दिन जल्द लाये जबकि छत्तर मंज़िल लखनऊ में अब्दुल्ला मिस्त्री, लोको वर्कशाप और धनिया चमार, किसान

भी मिस्टर खलीकुज्जमा और जगत नारायण मुल्ला व राजा साहब महमूदाबाद के सामने कुर्सी पर बैठे हुए नजर पड़ें। मेरे कामरेडो मेरे रिवोलूशनरी भाइयो- तुम से में क्या कहूँ और तुमको क्या लिखूँ, बस यह तुम्हारे लिए क्या कुछ कम मुसर्रत की बात होगी, जब तुम सुनोगे कि तुम्हारा एक भाई हँसता हुआ फाँसी पर चला गया और मरते-मरते ख़ुश था। मैं ख़ूब जानता हूँ कि जो स्प्रिट तुम्हारा तबक़ा रखता है-चूंकि मुझको भी फ़ख़्र है और जब बहुत ज़्यादा फ़ख़्र है कि एक सच्चा रिवोलूशनरी होकर मर रहा हूँ। मेरा पयाम तुमको पहुँचाना फ़र्ज़ था, मैं ख़ुश -मसरूर हूँ, मैं उस सिपाही की तरह हूँ जो फाइरिंग लाइन पर हँसता हुआ चला जा रहा हो और खन्दकों में बैठा हुआ गा रहा हो। तुम्हें दो शेर हसरत मोहानी साहब के लिख रहा हूँ-

जान को महवे ग़म बना दिल को वफ़ा निहाद कर
बन्द-ए-इश्क़ है तो यूँ कता रहे मुराद कर।
ऐ कि निजाते हिन्द की दिल से है तुझको आरज़ू
हिम्मते सर बुलन्द से यास या इंसदाद कर?

हज़ार दुख क्यों न आएं-बहरे ज़खार दरमियान में मौजें मारें-आतिश पहाड़ क्यों न हायल हो जाएँ, मगर ऐ आज़ादी के शेरों अपने-अपने गरम ख़ून को मातृभूमि पर छिड़कते हुए और जानों को मातृवेदी पर क़ुर्बान करते हुए आगे बढ़े चले जाओ। क्या तुम ख़ुश न होगे जब तुमको मालूम होगा कि हम हँसते हुए मर गये। मेरा वज़न ज़रूर कम हो गया है, और वह मेरे कम खाने की वजह से हो गया है-किसी डर या दहशत वजह से नहीं हुआ है-और मैं कन्हाईलाल दत्त की तरह वज़न न बढ़ा सका मगर हाँ ख़ुश हूँ, और बहुत ख़ुश हूँ। क्या मेरे लिए इससे बढ़कर कोई इज़्ज़त हो सकती है कि सबसे पहला और अव्वल मुसलमान हूँ जो आज़ाद-ए-वतन की ख़ातिर फाँसी पा रहा है-मेरे भाइयो! मेरा सलाम लो और इस नामुकम्मल काम को, जो हमसे रह गया है, तुम पूरा करना। तुम्हारे लिए यूपी में मैदानेअमल तैयार कर दिया। अब तुम जानो, तुम्हारा काम जाने। इससे ज़्यादा उम्दा मौक़ा तुम्हारे हज़ार प्रोपेगण्डे से न होता। स्कूल और कॉलिजों के तुलबा हमारी तरफ़ दौड़ रहे हैं, अब तुम्हें बहुत अर्से तक दिक़्क़त न होगी-

उठो-उठो सो रहे हो नाहक पयामेबाँगे जरस तो सुन लो
बढ़ो कि कोई बुला रहा है निशाने-मंज़िल दिखा-दिखाकर।

ज़्यादा क्या लिखूँ, सलाम लो और कमर हिम्मत बाँध लो और मैदानेअमल में आन पहुँची। ख़ुदा तुम्हारे साथ हो, मेरी मुल्की मुत्तहिदा जमाअत के सियासी लीडरो मेरा सलाम क़बूल करो और तुम हम लोगों को उस नज़र से न देखना जिस नज़र से दुश्मनाने वतन और खाइनीने क़ौम देखते थे। न हम डाकू थे, न क़ातिल-

कहाँ गया कोहेनूर हीरा किधर गई हाय मेरी दौलत,
वह सबका सब लूटकर कि उलटा हमीं को बता रहे डाकू हैं।

हम को दिनदहाड़े लूटा, फिर हमीं डाकू हैं। हमारे भाइयों और बहनों और बच्चों को जलियानवाला बाग में भून डाला और अब हमीं को कालस बलूट फ़ैसले में लिखा जाता है। अगर हम ऐसे हैं तो वह कैसे हैं और किस ख़िताब से पुकारे जाने क़ाबिल हैं, जिन्होंने हिन्दुस्तान का सुहाग लूट लिया, जिन्होंने लाखों बहादुरों को अपनी गरज के लिए मेसोपोटामिया और फ़्रांस के मैदान में सुलवा दिया, खूंखार जानवर, ज़ालिम दरिन्दे वह हैं या कि हम। हम बेबस थे, कमज़ोर थे, सब कुछ सुन लिया और ऐ वतनी भाइयो यह तुमने सुनवाया। आओ फिर मुत्तहिद हो जाओ, फिर मैदाने अमल में कूद पड़ो और मुकम्मल आज़ादी का ऐलान कर दो। अच्छा अब मैं रुख़सत होता हूँ और हमेशा के लिए ख़ैरबाद कहता हूँ। ख़ुदा तुम्हारे साथ हो और फ़िज़ा-ए-हिन्द पर आज़ादी का झण्डा जल्द लहराये। मेरे पास न वह ताकत है कि हिमालय की चोटी पर पहुँचकर एक ऐसी आवाज निकालूँ जो हर शख़्स को बेदार कर दे और न वह असबाब हैं कि जिससे फिर तुम्हारे दिल मुश्ताइल कर दूँ कि तुम उसी जोश से आगे बढ़कर खड़े जाओ जैसे सन् 20 व 21 में थे। मैं चन्द सुतूर के बाद रुख़सत होता हूँ।

To every man upon this earth,
Death cometh son of late,
But (then) how can a man die better,
Than facing fearful odds,
For the ashes of his fathers and,
Temples of his God

बाद को मैं अपने उन भाइयों से रुख़सत शुक्रिए के साथ होता हूँ जिन्होंने हमारी मदद ज़ाहिरा तौर पर की या पोशीदा। और यक़ीन दिलाऊँगा कि अशफ़ाक़ आख़िर दम तक सच्चा रहा और ख़ुश-ख़ुश मर गया-और ख़्यानते-वतनी का उसपर कोई ज़ुर्म नहीं लगाया जा सकता। वतनी भाइयों से गुज़ारिश है कि मेरे बाद मेरे भाइयों को वक़्त ज़रूरत न भूलें और उनकी मदद करें और उनका ख़याल करें।

वतन पर मर मिटनेवाला
अशफ़ाक़ वारसी हसरत
अज, फैज़ाबाद जेल

मेरी तहरीर मेरे वतनी भाइयों तक पहुँच जाये। ख़्वाह विद्यार्थीजी अख़बार के ज़रिये से या अंग्रेज़ी, हिन्दी, उर्दू में छपवाकर कांग्रेस के अय्याम में तक़सीम करा दें, मशकूर हूँगा। मेरा सलाम कबूल करें और मेरे भाइयों को न वह कभी भूलें और न मेरे वतनी भाई फ़रामोश करें। अलविदा !

अशफ़ाक़ उल्ला वारसी हसरत
फैज़ाबाद जेल,
19 दिसम्बर, 1927

•

भगतसिंह जनअधिकार यात्रा का प्रथम राष्ट्रीय सम्मेलन सम्पन्न

विगत 10 मई को भगतसिंह जनअधिकार यात्रा का प्रथम राष्ट्रीय सम्मेलन नयी दिल्ली में सम्पन्न हुआ। ग़ौरतलब है कि नौजवान भारत सभा, दिशा छात्र संगठन, बिगुल मज़दूर दस्ता और भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी की ओर से देश के 11 राज्यों में पिछले 12 मार्च से ही भगतसिंह जनअधिकार यात्रा चलायी जा रही है। यात्रा का पहला चरण 15 अप्रैल को समाप्त हुआ जिसके बाद 1857 के विद्रोह की वर्षगाँठ पर यात्रा का प्रथम राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किया गया। सम्मेलन में दिल्ली उत्तर प्रदेश, बिहार, हरियाणा, पंजाब, महाराष्ट्र, तेलंगाना, आन्ध्र प्रदेश, राजस्थान आदि राज्यों से भारी संख्या में छात्रों-युवाओं और मेहनतकशों ने भागीदारी की।

सम्मेलन में मंच संचालन विशाल ने किया। अध्यक्ष मण्डल की ज़िम्मेदारी प्रसेन, जी. श्रीनिवास, अश्विनी, दीपक शर्मा, अविनाश ने निभायी। कार्यक्रम की शुरुआत अनुष्टुप द्वारा पेश गीत 'मेरा रंग दे बसन्ती चोला' के साथ हुई। इसके बाद संघर्षशील पहलवान खिलाड़ियों के प्रतिनिधिमण्डल की ओर से अर्जुन अवार्डी पहलवान सत्यव्रत कादयान और योग चैम्पियन मनदीप ने भगतसिंह जनअधिकार यात्रा के मंच से बात रखी। खिलाड़ियों की सभी माँगों का पूरे सदन ने पुरज़ोर समर्थन किया। आगे विभिन्न संगठनों के नेताओं ने सभा को सम्बोधित किया और यात्रा के दौरान के अपने अनुभव साझा किये। भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI) की ओर से शिवानी, प्रसेन, वारुणी ने बात रखी। बिगुल मज़दूर दस्ता की ओर से अभिनव ने सभा को सम्बोधित किया। नौजवान भारत सभा की ओर से अरविन्द, दिशा छात्र संगठन की ओर से अमित, अदारा दख़ल की ओर से अवतार, स्त्री मुक्ति लीग की ओर से पूजा ने यात्रा के अपने अनुभव साझा किये। इसके अलावा महाराष्ट्र से निखिल एकडे, तेलंगाना से सहजा और श्रीजा, आन्ध्र प्रदेश से बुरुगा श्रीनिवास और अरुणा ने भी सभा में अपनी बात रखी। सम्मेलन का समापन जुलूस के साथ किया गया।

यात्रा की प्रमुख माँगें इस प्रकार हैं -

भगतसिंह जन अधिकार यात्रा की प्रमुख माँगें :

• शिक्षा-रोज़गार-स्वास्थ्य और आवास मौलिक अधिकार घोषित हों। निजीकरण पर रोक लगे। भगतसिंह राष्ट्रीय रोज़गार गारण्टी क़ानून पारित करो, रोज़गार न दे पाने की सूरत में 10,000 रुपये प्रतिमाह बेरोज़गारी भत्ता दिया जाये। केन्द्र व राज्य सरकारों के सभी ख़ाली पद शीघ्र भरो। 'अग्निवीर' योजना को तत्काल रद्द कर सेना में पक्की भरती की व्यवस्था बहाल की जाये।

• सभी श्रम क़ानूनों को सख़्ती से लागू करो, प्रस्तावित चार 'लेबर कोड्स' रद्द करो। ग्रामीण मज़दूरों को भी श्रम क़ानूनों के अन्तर्गत लाया जाये। 'पुरानी पेंशन स्कीम' बहाल करो। ठेकेदारी प्रथा ख़त्म कर नियमित प्रकृति के कामों पर पक्के रोज़गार का प्रबन्ध करो।

• महँगाई पर रोक लगाने के लिए सभी अप्रत्यक्ष करों को समाप्त किया जाये और बढ़ती सम्पत्ति के आधार पर प्रगतिशील प्रत्यक्ष करों की व्यवस्था को मज़बूती के साथ लागू किया जाये।

• मनरेगा योजना को सख़्ती से लागू किया जाये, इसके तहत पूरे साल का काम देने का प्रावधान किया जाये और इसके काम पर कम-से-कम न्यूनतम वेतन जितनी राशि प्रदान की जाये।

• ग़रीब और मँझोले किसानों के लिए बीज, खाद, बिजली, आदि पर सब्सिडी की समुचित व्यवस्था हेतु अमीर वर्गों पर विशेष कर लगाये जायें, सिंचाई की सरकारी व्यवस्था और संस्थागत ऋण का भी समुचित प्रबन्ध किया जाना चाहिए।

• "सर्वधर्म समभाव" की नकली धर्मनिरपेक्षता की जगह सच्चे धर्मनिरपेक्ष राज्य को सुनिश्चित करने के लिए क़ानून लाया जाये। किसी भी नेता या पार्टी द्वारा धर्म, समुदाय या आस्था का सार्वजनिक जीवन में किसी भी रूप में उल्लेख व इस्तेमाल करना दण्डनीय अपराध घोषित किया जाये।

• छुआछूत ही नहीं बल्कि हर प्रकार से जातिगत भेदभाव को संवैधानिक संशोधन करके दण्डनीय अपराध घोषित किया जाये।

• चुनावी दलों व सरकार द्वारा किये जाने वाले भ्रष्टाचार पर रोक लगे और इनके पब्लिक ऑडिट व जाँच की व्यवस्था की जाये।

• स्त्रियों के साथ सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक भेदभाव के हर रूप को समाप्त करो, इसके लिए सख़्त क़ानून लाये जायें।

• धार्मिक व जातिगत वैमनस्य भड़काने वाले तथा साम्प्रदायिक हिंसा व मॉब लिंचिंग में सक्रिय हर प्रकार के संगठनों और दलों पर तत्काल प्रतिबन्ध लगाकर इन्हें आतंकवादी घोषित किया जाये और इनके नेताओं व गुर्गों पर तत्काल कठोर कार्रवाई की जाये।

भगतसिंह जनअधिकार यात्रा, महाराष्ट्र का पहला राज्य सम्मेलन पुणे में सम्पन्न

- बेरोज़गारी, ग़रीबी, महँगाई, भ्रष्टाचार, साम्प्रदायिकता के ख़िलाफ़ लड़ाई तेज़ करने का संकल्प

- शिक्षा, स्वास्थ्य और रोज़गार को मौलिक अधिकार घोषित करने, भगतसिंह राष्ट्रीय रोजगार गारण्टी क़ानून पारित करने, ठेका प्रथा, अप्रत्यक्ष करों को समाप्त करने, धार्मिक घृणा भड़काने वाले संगठनों का बहिष्कार करने और शिक्षा के साम्प्रदायीकरण के ख़िलाफ़ प्रस्ताव पारित किये गये

- जातीय-धार्मिक तनाव फैलाने वाले सभी मीडिया चैनलों का बहिष्कार करने का संकल्प

भगतसिंह जनअधिकार यात्रा के प्रथम राष्ट्रीय सम्मेलन के बाद विभिन्न राज्यों में यात्रा के राज्य सम्मेलनों की शुरुआत हो चुकी है। 21 मई को भगतसिंह जनअधिकार यात्रा, महाराष्ट्र का राज्य सम्मेलन पुणे में आयोजित किया गया। सम्मेलन में राज्य भर से बड़ी संख्या में मज़दूर-मेहनतकश, युवा, छात्र, महिलाएँ, निर्माण मज़दूर, सफ़ाई कर्मी, ठेका मज़दूर शामिल हुए। कार्यक्रम का संचालन नौजवान भारत सभा, महाराष्ट्र के संयोजक रवि ने किया। अध्यक्षता अश्विनी, अविनाश, अभिजीत ने की।

स्त्री मुक्ति लीग, मुम्बई की कार्यकर्ता पूजा ने सम्मेलन की शुरुआत में अपना वक्तव्य देते हुए भगतसिंह जनअधिकार यात्रा के विस्तार और प्रकृति के बारे में बताया और यात्रा के दौरान अपने अनुभव साझा किये। उन्होंने कहा कि आज के दौर में जब आम मेहनतकश जनता की लूट बदस्तूर जारी है, उनके बुनियादी अधिकार छीने जा रहे हैं और विरोध की आवाज को सरकारें दबाने में जुटी हुई हैं, इस यात्रा ने आशा और संघर्ष का सन्देश और क्रान्तिकारियों की विरासत को जन-जन तक पहुँचाया। यात्रा के दौरान मिलने वाले छात्रों-युवाओं, मज़दूरों ने यात्रा के मुद्दों का समर्थन किया क्योंकि ये मुद्दे वास्तव में जनता के जीवन से जुड़े मुद्दे हैं। इस यात्रा के माध्यम से लोगों के जीवन से जुड़े बेरोज़गारी, महँगाई, भ्रष्टाचार, आर्थिक असमानता जैसे वास्तविक मुद्दों को लोगों तक पहुँचाया गया और उनमें जागरूकता पैदा की गयी और उन्हें जाति-धर्म की दीवारों से ऊपर उठकर इन मुद्दों के इर्द-गिर्द संगठित होने का आह्वान किया गया।

इसके बाद सभी ने दंगे, जातीय-धार्मिक तनाव फैलाने वाले सभी मीडिया चैनलों का बहिष्कार करने का संकल्प लिया।

भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी के निखिल ने सम्मेलन में देश में शिक्षा और रोज़गार की स्थिति पर विस्तार से बात रखी। उन्होंने कहा कि सरकार ने नयी शिक्षा नीति के माध्यम से निजीकरण की गति बढ़ा दी है। इस सरकार के लिए शिक्षा का उद्देश्य अच्छे नागरिक बनाना नहीं बल्कि शिक्षा को व्यवसाय बनाना है। आज शिक्षा का साम्प्रदायीकरण भी बड़े पैमाने पर हो रहा है, और डार्विन के विकासवाद के सिद्धान्त जैसी चीज़ों को बाहर करना यह दर्शाता है कि वैज्ञानिक और तर्कसंगत नागरिक पैदा करने वाली शिक्षा प्रदान करने के बजाय अवैज्ञानिकता, अतार्किकता फैलायी जा रही है। इतिहास को विकृत करके झूठा इतिहास पढ़ाया जा रहा है। आज देश में 32 करोड़ लोग बेरोज़गारी से जूझ रहे हैं और सरकार उन्हें पकौड़ा तलने की सलाह दे रही है। शिक्षा एवं रोज़गार हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। हमारा संघर्ष शिक्षा और रोज़गार को मौलिक अधिकार बनवाने का है। सम्मेलन में अनेक कन्नड़ एवं तेलुगु भाषी श्रमिक भाई-बहन भी उपस्थित थे। मुम्बई में सवित्री-फ़ातिमा अध्ययन समूह चलाने वाली साथी ललिता ने तेलुगु में और

साथी सुप्रीत ने कन्नड़ में अपने विचार व्यक्त किये। उन्होंने भगतसिंह जनअधिकार यात्रा की भूमिका को संक्षेप में सभी के समक्ष प्रस्तुत किया।

आरडब्ल्यूपीआई, मुम्बई शहर समन्वयक साथी बबन ने पूँजीपतियों, अमीरों, बिल्डरों और दलालों के लिए काम करने वाली इस राज्य शक्ति का असली चेहरा लोगों के सामने उजागर किया और आर्थिक असमानता और भ्रष्टाचार की वास्तविकता को सम्मेलन के सामने रखा। उन्होंने हिण्डनबर्ग, राफेल, पीएम केयर्स, नोटबन्दी, सेंट्रल विस्टा जैसी परियोजनाओं के पीछे के भ्रष्टाचार को उजागर करते हुए कहा कि काले धन वापस लाने और भ्रष्टाचार को मिटाने का दावा करने वाली मोदी सरकार ने माल्या-मोदी जैसे पूँजीपतियों को भागने में मदद की है! अप्रत्यक्ष कर, जीएसटी, पेट्रोल-डीजल पर टैक्स, उद्यमियों को छूट, वेतन में कमी आज की महँगाई के असली कारण हैं।

महाराष्ट्र बांधकाम कामगार यूनियन के अध्यक्ष साथी परमेश्वर ने देश भर में श्रमिकों की मजदूरी, काम के घण्टे, काम करने की स्थिति और रहने की स्थिति के बारे में विस्तार से बताया। अध्यक्षमण्डल के अभिजीत ने देश भर में पैदा हो रहे जातीय तनाव और हिन्दुत्व ताकतों की मानव विरोधी राजनीति की आलोचना की और कहा कि वे धर्म की राजनीति करके जनता को असली सवालों से भटकाने की साज़िश करते हैं। उन्होंने गोहत्या, लव जिहाद जैसे मुद्दों पर बीजेपी की दोतरफ़ा नीति का पर्दाफ़ाश करते हुए उसका असली चरित्र उजागर कर दिया। उन्होंने शहीद भगतसिंह के एक उद्धरण का हवाला देते हुए श्रमिकों के बीच वर्गीय एकता की आवश्यकता पर प्रकाश डाला।

अहमदनगर के साथी अविनाश ने यात्रा के अनुभव और माँगों के महत्व के बारे में बात की। समापन पर मुम्बई के साथी अविनाश ने प्रस्ताव प्रस्तुत किये, जिसे सम्मेलन में हाथ उठाकर पारित कर दिया गया।

कार्यक्रम के दौरान मुम्बई और पुणे की नौजवान भारत सभा की सांस्कृतिक टीम ने क्रान्तिकारी गीत प्रस्तुत किये. मुम्बई की टीम ने एक नाटक प्रस्तुत किया जिसमें पूँजीवादी राजनीतिक नेताओं और पूँजीपतियों के बीच सम्बन्धों का पर्दाफ़ाश किया गया। कार्यक्रम का समापन मार्च और नारेबाज़ी के साथ हुआ।

स्त्री मुक्ति लीग, मुम्बई ने पूँजीवादी पितृसत्ता के ख़िलाफ़ आवाज़ बुलन्द करते हुए किया ‘मुक्ति के स्वर’ पुस्तकालय का उद्घाटन

कई वर्षों से स्त्री मुक्ति लीग, मुम्बई के मानखुर्द-गोवण्डी इलाक़े में स्त्री मुक्ति के सवाल पर काम करती रही है। पूँजीवादी पितृसत्ता की बेड़ियों को तोड़कर, एक नये समाज के निर्माण के लिये जनता को साथ लेकर वह अपनी आवाज़ बुलन्द कर रही है। स्त्री मुक्ति लीग के कार्यकर्ताओं ने सीएए-एनआरसी के ख़िलाफ़ इलाक़े में अभियान चलाया था और शाहीन बाग की तर्ज़ पर गोवण्डी को फ़ासीवादी मोदी सरकार के प्रतिरोध का केन्द्र बनाने का प्रयास भी किया था, जिसको महाराष्ट्र सरकार ने पुलिस बल के दम पर कुचलने का काम किया था। स्त्री मुक्ति लीग के कार्यकर्ताओं पर मुक़दमे भी दर्ज़ कराये गये थे। मगर इन सबसे कार्यकर्ताओं के हौसले बुलन्द ही हुए और पूरे गोवण्डी-मानखुर्द के इलाक़े में स्त्रियों के उत्पीड़न की घटनाओं के ख़िलाफ़ उन्होंने लगातार

अभियान चलाया व विरोध प्रदर्शन किये। फ़ासीवादी मोदी सरकार के आने के बाद से स्त्री-विरोधी घटनाओं में लगातार बढ़ोत्तरी देखने को मिल रही है। कठुआ, उन्नाव, बलरामपुर, हाथरस, मणिपुर व अन्य घटनाएँ समाज की वीभत्सतम तस्वीर पेश कर रही हैं। 'बेटी बचाओ, बेटी पढाओ' और 'बहुत हुआ महिलाओं पर वार, अबकी बार मोदी सरकार' का नारा देकर सत्ता में पहुँची मोदी सरकार कुलदीप सिंह सेंगर, चिन्मयानद, बृजभूषण जैसों को सरंक्षण देने का काम कर रही है।

स्त्री मुक्ति लीग पूँजीवादी पितृसत्तात्मक विचारों और मूल्य-मान्यताओं के ख़िलाफ़ लगातार सक्रिय रही है। इसके तहत लम्बे समय से स्त्री मुक्ति लीग विभिन्न प्रकार के काम ज़मीन पर कर रही है। इनमें से कुछ हैं : सावित्री-फ़ातिमा अध्ययन मण्डल चलाना, राजनीतिक और सामाजिक विषयों पर महिला बैठकें आयोजित करना, झुग्गी बस्ती में फ़िल्म स्क्रीनिंग और चर्चा-सत्र का आयोजन, ऑनलाइन चर्चा-सत्र, विभिन्न कार्यशालाओं-व्याख्यानों का आयोजन करना, पोस्टर प्रदर्शनी और पर्चे बाँटकर अभियान चलाना, स्त्रियों पर होने वाले अन्याय और अत्याचारों के ख़िलाफ़ लगातार आवाज़ उठाना, आदि। इन्हीं कामों को आगे बढ़ाते हुए जनता से आर्थिक सहयोग जुटाकर पिछली 9 जुलाई को स्त्री मुक्ति लीग के पुस्तकालय व कार्यालय का उद्घाटन किया गया। इसका नाम रखा गया 'मुक्ति चे स्वर' (हिन्दी में 'मुक्ति के स्वर') पुस्तकालय।

पुस्तकालय के उद्घाटन के अवसर पर एक सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन किया गया। इस मौक़े पर स्त्री मुक्ति संघर्ष में शामिल क्लारा ज़ेटकिन, रोज़ा लक्ज़मबर्ग, सावित्रीबाई फुले, फ़ातिमा बी शेख, प्रीतिलता वाडेदार, दुर्गा भाभी के साथ-साथ साथी मीनाक्षी और साथी शालिनी जैसी क्रान्तिकारी स्त्रियों की तस्वीरों के साथ 'स्त्री मुक्ति का रास्ता, इंक़लाब का रास्ता', 'जीना है तो लड़ना होगा, मार्ग मुक्ति का गढ़ना होगा', 'पूँजीवादी पितृसत्ता मुर्दाबाद' जैसे नारे लगाते हुए रैली निकाली गयी और 'औरत' नाटक का मंचन किया गया। साथ ही गीत, रैप, कविता पाठ आदि की भी प्रस्तुति की गयी। इस अवसर पर स्त्री मुक्ति लीग, महाराष्ट्र की संयोजक डा. पूजा ने कहा कि 'मुक्ति चे स्वर' में विभिन्न प्रकार का प्रगतिशील और क्रान्तिकारी साहित्य उपलब्ध है। इसके अलावा यहाँ नियमित रूप से स्त्री मुक्ति के सवाल पर बैठकें, अध्ययन आदि किये जायेंगे, लड़कियों और महिलाओं को 'सावित्री-फ़ातिमा अभ्यास समूह' के तहत नाटक, गीत, कविता आदि की शिक्षा दी जायेगी, कम्प्यूटर सिखाया जायेगा तथा फ़िल्म स्क्रीनिंग और व्याख्यान आयोजित किये जायेंगे। उन्होंने कहा कि मुम्बई जैसे महानगर में स्त्री मुक्ति लीग की ओर से, और लोगों के सहयोग से इस पुस्तकालय की शुरुआत की गयी है जो आज के इस स्त्री-विरोधी समय में एक अहम और ज़रूरी क़दम है। इस पुस्तकालय में स्त्रियों की मुक्ति से सम्बन्धित जिन प्रश्नों पर कार्यक्रम आयोजित किये जायेंगे वे आने वाले समय में पूँजीवादी पितृसत्ता के विरुद्ध स्त्रियों को जागृत और गोलबन्द करने का काम भी करेंगे।

पटना विश्वविद्यालय में फ़ीस वृद्धि के ख़िलाफ़ आन्दोलन

आम तौर पर भाजपा सरकार जब से सत्ता में आयी है तभी से शिक्षा-विरोधी और छात्र-विरोधी नीतियाँ लागू कर रही है। यूजीसी को ख़त्म करने की कोशिश हो या उच्च शिक्षा के बजट में कटौती। इन सारे क़दमों से उनके इरादों को साफ़ तौर पर समझा जा सकता है। इसी क्रम में मोदी सरकार नयी शिक्षा नीति- 2020 लेकर आयी जिसके तहत देशभर के उच्च शिक्षण संस्थानों में कई तरह के बदलावों को देखा जा सकता है। कहीं पर सीबीसीएस प्रणाली लागू हो रही है तो कहीं चार वर्षीय स्नातक कोर्स (FYUP)।

नयी शिक्षा नीति-2020 के तहत बिहार के सबसे प्रमुख

विश्वविद्यालय पटना विश्वविद्यालय में शैक्षणिक सत्र 2022 से सीबीसीएस प्रणाली लागू कर दी गयी जिसके तहत छात्रों को "चॉइस" के नाम पर कई तरह के झूठे वादों के साथ-साथ कई तरह की मुसीबतों का भी सामना करना पड़ा।

इसके तहत स्नातक कोर्स में भी सेमेस्टर प्रणाली लागू हुई और फ़ीस में भी वृद्धि हो गयी। हालाँकि सीबीसीएस लागू करने के बाद भी विश्वविद्यालय के ढाँचागत सुविधा में कोई वृद्धि नहीं हुई और न ही शिक्षकों के ख़ाली पदों को भरा गया। पहले से कार्यरत शिक्षकों एवं कर्मचारियों पर काम का दबाव भी बढ़ गया। फ़ीस वृद्धि के बाद फ़ीस लगभग दुगुनी हो गयी।

फ़ीस वृद्धि की जानकारी होते ही दिशा छात्र संगठन के कार्यकर्ताओं ने तुरन्त पहलक़दमी लेते हुए इसके ख़िलाफ़ पर्चा निकालकर छात्रों को एकजुट करना शुरू किया। प्रचार के अन्य माध्यमों से भी छात्रों तक फ़ीस वृद्धि के ख़िलाफ़ एकजुट होने और आन्दोलनरत होने की बात पहुँचायी गयी। पटना कॉलेज से शुरु करते हुए पटना विश्वविद्यालय के अन्य कॉलेजों में भी इस बात को पहुँचाया गया। कई बार विश्वविद्यालय प्रशासन का घेराव किया गया। शुरुआत में विश्वविद्यालय प्रशासन इस पूरे मसले पर कोई कार्रवाई नहीं कर रहा था लेकिन आम छात्रों के साथ मिलकर दिशा छात्र संगठन ने विश्वविद्यालय प्रशासन को आन्दोलनरत छात्रों से मिलने, बढ़ी हुई फ़ीस जमा करने की अन्तिम तिथि बढ़ाने लिए मजबूर किया। इसके बाद भी फ़ीस वृद्धि वापस लेने पर विश्वविद्यालय प्रशासन के अड़ियल रवैये पर दिशा छात्र संगठन ने अपने आन्दोलन को और तेज़ किया जिससे कि जिला प्रशासन को मजबूर होकर आन्दोलन कर रहे छात्रों के प्रतिनिधिमण्डल को राजभवन ले जाना पड़ा। वहां प्रतिनिधिमण्डल की मुलाक़ात बिहार के ज्वाइण्ट सेक्रेटरी से हुई। इसके बाद फ़ीस वृद्धि वापस लेने के आश्वासन के साथ-साथ पटना विश्वविद्यालय के कुलपति से प्रतिनिधिमण्डल की मुलाक़ात सुनिश्चित की गयी। इसके बाद कुलपति को भी इस प्रतिनिधिमण्डल से मिलना पड़ा। अन्त में कुछ दिनों के बाद विश्वविद्यालय प्रशासन को फ़ीस वृद्धि में कटौती करनी पड़ी और बढ़ी हुई फ़ीस का एक बड़ा हिस्सा कम कर दिया गया।

इस पूरे आन्दोलन में दिशा छात्र संगठन के नेतृत्व में आम छात्रों की एकजुटता के दम पर ही जीत हासिल की गयी। आन्दोलन की इस जीत ने छात्रों के बीच यह बात स्थापित कर दिया कि छात्रों के मुद्दों को लेकर केवल स्वतन्त्र क्रान्तिकारी छात्र संगठन ही आर-पार की लड़ाई लड़ सकता है और एक मुकम्मल अंजाम तक पहुँचा सकता है। पटना विश्वविद्यालय में कई चुनावबाज़ पार्टियों के छात्र संगठन और नेताओं के अलावा छात्रसंघ भी मौजूद है लेकिन न तो किसी छात्र संगठन ने और न ही छात्रसंघ ने इस पूरे मसले को गम्भीर रूप से लिया। सिर्फ़ ज्ञापन सौंपने की रस्मी कवायद को अंजाम दिया गया। बाद में दिशा छात्र संगठन के नेतृत्व में बढ़ते आन्दोलन के दबाव में आकर आन्दोलन के अन्तिम चरण में उन्हें भी शामिल होना पड़ा लेकिन इसके बाद भी उसने विश्वविद्यालय प्रशासन से किसी न किसी समझौते पर इस आन्दोलन को ख़त्म करने की कोशिश की। छात्रों की एकजुटता ने इस कोशिश को सफल होने नही दिया।

पटना विश्वविद्यालय छात्र संघ ही नहीं बल्कि कैम्पस में मौजूद तमाम चुनावबाज़ पार्टियों के छात्र संगठनों ने भी इस पूरे मसले पर कोई कार्रवाई नहीं की क्योंकि यह उनके लिए मसला ही नहीं था। तथाकथित लेफ्ट पार्टियों के छात्र संगठन पहले तो पूरे आन्दोलन से ग़ायब रहे और अन्तिम समय में छात्रों के बीच जाकर उनकी पहलक़दमी को रोकने की हरचन्द कोशिश करते नज़र आये। उन्होंने आम छात्रों को गिरफ़्तार हो जाने तथा करियर बर्बाद हो जाने तक का डर दिखाया ताकि वे इस आन्दोलन में हिस्सेदारी न करें। हालांकि ऐसा हुआ नहीं और बड़ी संख्या में आम छात्रों ने इस आन्दोलन में भागीदारी की।

इस आन्दोलन ने छात्रों के बीच यह स्थापित किया कि आज के समय में छात्र राजनीति में आम छात्रों के मुद्दों को लेकर किसी भी चुनावबाज़ पार्टी के छात्र संगठन आर-पार की लड़ाई नहीं लड़ सकते क्योंकि फ़ीस वृद्धि से लेकर कोई भी छात्र-विरोधी नीतियाँ उनकी ही आका पार्टियाँ लागू करती है। इसीलिए आज छात्र राजनीति में एक ऐसे छात्र संगठन की आवश्यकता है जो किसी चुनावबाज़ पार्टी से सम्बन्धित न हो और जो आम छात्रों के मुद्दों को लेकर समझौता विहीन एवं जुझारू तरीक़े से लड़े।

दिशा छात्र संगठन एक ऐसा ही स्वतन्त्र क्रान्तिकारी छात्र संगठन है जो आम छात्रों की पहल पर बना है।

इस पूरे आन्दोलन ने आम छात्रों को यह भी सिखाया की लड़ाई केवल फ़ीस वृद्धि तक ही सीमित नहीं है बल्कि इसके आगे सीबीसीएस प्रणाली, नयी शिक्षा नीति-2020 के साथ-साथ इस मुनाफ़े पर आधारित व्यवस्था को भी उखाड़ फेंकने की आवश्यकता है जिसमें शिक्षा एक बाज़ारू माल बन गयी है जिसे केवल वही हासिल कर सकता है जिसके पास पैसा है।

भगतसिंह जनअधिकार यात्रा, उत्तराखण्ड एवं सीमावर्ती क्षेत्रों का प्रथम राज्य सम्मेलन

'भगतसिंह जन अधिकार यात्रा' उत्तराखण्ड एवं

सीमावर्ती क्षेत्र का प्रथम सम्मेलन 27 अगस्त को नांगल में सम्पन्न हुआ। सम्मेलन में 'भगतसिंह जन अधिकार यात्रा' की माँगों और उद्देश्यों पर विस्तार के साथ बातचीत की गयी।

सम्मेलन में स्त्री मुक्ति लीग की कविता कृष्णपल्लवी ने अपनी बात रखते हुए कहा कि आज के इस फ़ासीवादी दौर में नौजवानों-मेहनतकशों की क्रान्तिकारी एकजुटता ही हमारे देश को बर्बरता की तरफ जाने से रोक सकती है। यह देश बर्बर फ़ासिस्ट आतताइयों के नंगे नाच का जीता जागता मंच बनता जा रहा है। पूरे देश में धार्मिक-जातीय-क्षेत्रीय उन्माद को ज़ोर-शोर से बढ़ावा दिया जा रहा है। 2014 से फ़ासिस्ट मोदी सरकार के आने के बाद मेहनतकशों के हक़ों-अधिकारों को क़ानून और पुलिस-फौज के बूटों तले रौंदने का सिलसिला बदस्तूर तरीक़े से बढ़ा है। एक तरफ जहाँ

भारत में अरबपतियों की संख्या में बढ़ोत्तरी हुई है वहीं दूसरी तरफ मज़दूरों-मेहनतकशों की ज़िन्दगी और भी बदतर हुई है। लोगों को उनकी बुनियादी समस्याओं से ध्यान भटकाने के लिए कभी अन्धराष्ट्रवाद तो कभी मन्दिर-मस्जिद का मुद्दा उठाया जाता है। ये सिलसिला तब तक चलता रहेगा जब तक हम इन हिन्दुत्ववादी फ़ासिस्टों के झूठे कुत्सा-प्रचारों का शिकार होते रहेंगे और आपस में ही लड़ते रहेंगे। कविता कृष्णपल्लवी ने महिलाओं का भी आह्वान किया कि आज महिलाओं को पुरुषों के कन्धे-से-कन्धा मिलाकर अपने हक़-अधिकार के लिए लड़ने की ज़रूरत है। कोई भी लड़ाई बिना आधी आबादी के भागीदारी के अधूरी है। वो लड़ाई जीत के मुक़ाम तक जा ही नहीं सकती, जब तक स्त्रियाँ उससे दूर रहेंगी।

इससे पहले सम्मेलन का संचालन करते हुए नौजवान भारत सभा के अपूर्व ने 'भगतसिंह जन अधिकार यात्रा' की शुरुआत, उसके महत्व और अब तक के प्रचार अभियानों में जनता से प्राप्त हुए सकारात्मक और नकारात्मक प्रतिक्रियाओं पर विस्तार से बात रखते हुए एक रिपोर्ट पेश किया। अपूर्व ने बताया कि इस पूरे अभियान की माँगों और इसके विविध प्रचार रूपों का जनता के बीच बहुत ही सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। लोग मोदी सरकार की नीतियों, महँगाई, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार और साम्प्रदायिक राजनीति से त्रस्त हैं। ये अभियान एक ऐसे समय में देश के 13 राज्यों में चलाया जा रहा है जब भाजपा और मोदी सरकार विरोध की छोटी से भी छोटी आवाज़ को भी दबा दे रही है। तमाम विपक्षी पार्टियाँ व राजनीतिक दल, फ़ासिस्ट मोदी सरकार के सामने घुटने टेक दिये हैं। उसकी जन विरोधी नीतियों की खुलकर मुख़ालफ़त करने की क्षमता भी ये पार्टियाँ खोती चली जा रही हैं। ऐसे में आज जरूरत है कि नये सिरे से व्यापक मेहनतकश आबादी को उसके हक़ों-अधिकारों को लेकर संगठित किया जाये। इसमें 'भगतसिंह जन अधिकार यात्रा' जैसे अभियानों की आज सख़्त से सख़्त जरूरत है, जो इस देश की मेहनतकश आबादी को संगठित कर सके। इस देश की मेहनतकश आबादी संगठित होकर न सिर्फ अपने वास्तविक अधिकारों को ले सकती है बल्कि वो अपने लोहे के हाथों से इन फ़ासिस्टों को धूल भी चटा सकती है।

सम्मेलन में नौजवान भारत सभा के प्रदीप ने कहा कि, इतिहास के रथ का पहिया नौजवानों के ख़ून से आगे बढ़ता है। किसी भी देश को आज़ाद और बेहतर बनाने वाले वहाँ के नौजवान ही होते हैं। लेकिन सत्ताधारी कभी नहीं चाहते कि नौजवान एकजुट हों और अपने देश समाज की जीवन्त समस्याओं पर चिन्तन करें! इसलिए उनके बीच हर तरह के नशे की ख़ुराक जान-बूझकर पहुँचाई जाती है। शराब और ड्रग्स के नशे से नौजवान अगर बच भी जाये तो मोबाइल, इण्टरनेट के द्वारा जो पतनशील सांस्कृतिक नशा परोसा जाता है उससे बच पाना बहुत मुश्किल हो जाता है।

सम्मेलन में किसान नेता हेमेन्द्र चौधरी ने भी अपनी बात रखी। उन्होंने कहा कि, चुनाव आते ही सरकारें जनता को ख़ैरात बाँटने लगती हैं। जनता का ही पैसा लेकर उन्हें पाँच किलो राशन, तेल, चीनी और चन्द पैसों की कोई न

कोई सब्सिडी पकड़ा कर ये एहसास दिलाने की कोशिश की जाती है कि देखो!हमने तुमको कितना दिया! उनके इस जाल में पड़ने की ज़रूरत नहीं है। हमें ख़ैरात नहीं अपना हक़ चाहिए। हमें एक समान निःशुल्क शिक्षा और रोज़गार की गारण्टी चाहिए! हमें 25,000 न्यूनतम मज़दूरी और 10,000 बेरोज़गारी भत्ता चाहिए।

बिगुल मज़दूर दस्ता के रामाधार ने 'भगतसिंह जन अधिकार यात्रा' की माँगों और उसकी आज की ज़रूरत पर विस्तार से बात रखी। सम्मेलन के समापन के पश्चात चार्ली चैप्लिन की फ़िल्म 'मॉडर्न टाइम्स' दिखायी गयी।

भगतसिंह जनअधिकार यात्रा का गोरखपुर का पहला जिला सम्मेलन सम्पन्न

भगतसिंह जनअधिकार यात्रा का गोरखपुर जिले का पहला जिला सम्मेलन चन्द्रशेखर आज़ाद के जन्मदिवस की पूर्वसन्ध्या पर 22 जुलाई को गोरखपुर के कचहरी स्थित अधिवक्ता सभागार में हुआ। सम्मेलन की शुरुआत में अंजली ने 12 मार्च से अब तक भगतसिंह जनअधिकार यात्रा की रिपोर्ट प्रस्तुत की साथ ही यात्रा की माँगों पर बातचीत की।

शिक्षा-रोज़गार के सवाल पर बातचीत रखते हुए दिशा छात्र संगठन की अंजलि ने कहा कि देश में प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक पूँजीपतियों के मुनाफे की भेंट चढ़ायी जा चुकी है। नयी शिक्षा नीति के लागू होने के साथ ही सभी विश्वविद्यालयों की फ़ीस में वृद्धि शुरु हो चुकी है। गोरखपुर में लगातार दूसरे साल फ़ीस वृद्धि हुई है। इसी तरह रोज़गार का भयंकर संकट इस स्थिति तक पहुँच गया है कि वर्तमान समय में बेरोज़गारी की स्थिति कोविड के समय की स्थिति तक पहुंच गयी है। सभी श्रम क़ानूनों की धज्जियाँ उड़ा कर पूँजीपतियों को मेहनतकशों के लूट की खुली छूट दे दी गयी है।

सम्मेलन में बातचीत रखते हुए भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी के प्रसेन ने कहा कि देश की आम मेहनतकश आबादी महँगाई के पाटे में पिस रही है। टमाटर, तेल, सिलिण्डर समेत हर ज़रुरी चीज़ के दाम आसमान छू रहे हैं। उत्तर प्रदेश में बेरोज़गारी की भयानक स्थिति को इसी से समझा जा सकता है कि पिछले कई सालों से सरकार के तमाम विभागों में ग्रुप सी और डी के पदों पर भर्तियाँ ही नहीं आयी हैं। शिक्षा-चिकित्सा समेत हर चीज़ बाज़ार में बिक रही है। वास्तव में पूँजीपति वर्ग ने भाजपा और संघ परिवार को इसीलिए सत्ता में बैठाया ही है ताकि जनता की सुविधाओं में कटौती करके उनकी झोली भर सके और इसकी वजह से पैदा होने वाले असन्तोष को जाति और धर्म के आधार पर नफ़रत फैलाकर डायवर्ट कर सके। इस फ़ासीवादी हमले का मुकाबला पूँजीवादी चुनावी गठबन्धनों के भरोसे नहीं बल्कि मेहनतकश जनता की जुझारू जन एकजुटता से किया जा सकता है।

सम्मेलन में नौजवान भारत सभा के विकास, पीयूसीएल के फतेह बहादुर सिंह ने बात रखी। सम्मेलन के दौरान 'तमाशा' नाटक की प्रस्तुति की गयी।

सम्मेलन की अध्यक्षता कर्मचारी नेता जगदीश पाण्डेय ने की। सम्मेलन का समापन अधिवक्ता सभागार से बिस्मिल प्रतिमा तक पैदल मार्च निकाल कर किया गया।

नवप्रवेशी छात्रों की सहायता के लिए लगाये जा रहे हैं 'दिशा हेल्प डेस्क'

नये सत्र की शुरुआत के साथ ही देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों में दिशा छात्र संगठन की ओर से 'दिशा हेल्प डेस्क' लगाया गया। गोरखपुर विश्वविद्यालय, पटना विश्वविद्यालय और जेएनयू में दिशा हेल्प डेस्क के ज़रिये बहुत से नवप्रवेशी छात्रों तक प्रवेश सम्बन्धी सूचनाएँ पहुँचाने के साथ उनको आज के दौर के हालात से परिचित कराया गया। हेल्प डेस्क पर मौजूद दिशा के कार्यकर्ताओं ने कहा कि विश्वविद्यालय में प्रवेश करने के साथ ही किसी युवा के एक ज़िम्मेदार नागरिक जीवन की औपचारिक तौर पर शुरुआत हो जाती है। ऐसे में विश्वविद्यालय के अनुभव को केवल क़िताब का रट्टा मारकर करियर की दौड़ में लग जाने के दृष्टिकोण से नहीं देखना चाहिए बल्कि सामाजिक परिस्थितियों का ज्ञान हासिल करके, उसमें हस्तक्षेप के लिए भी कमर कस लेनी चाहिए।

•

जाति-धर्म के झगड़े छोड़ो !
सही लड़ाई से नाता जोड़ो !!

भगतसिंह के जन्मदिवस (28 सितम्बर) के अवसर पर

"लोगों को परस्पर लड़ने से रोकने के लिए वर्ग-चेतना की ज़रूरत है। ग़रीब मेहनतकश व किसानों को स्पष्ट समझा देना चाहिए कि तुम्हारे असली दुश्मन पूँजीपति हैं, इसलिए तम्हें इनके हथकण्डों से बचकर रहना चाहिए और इनके हत्थे चढ़ कुछ न करना चाहिए। संसार के सभी ग़रीबों के, चाहे वे किसी भी जाति, रंग, धर्म या राष्ट्र के हों, अधिकार एक ही हैं। तुम्हारी भलाई इसी में है कि तुम धर्म, रंग, नस्ल और राष्ट्रीयता व देश के भेदभाव मिटाकर एकजुट हो जाओ और सरकार की ताक़त अपने हाथ में लेने का यत्न करो।"

- शहीद-ए-आज़म भगतसिंह

गणेश शंकर विद्यार्थी के जन्मदिवस (26 अक्टूबर) के अवसर पर

"हमारे देश में धर्म के नाम पर कुछ इने-गिने आदमी अपने हीन स्वार्थों की सिद्धि के लिए लोगों को लड़ाते-भिड़ाते हैं। धर्म और ईमान के नाम पर किये जाने वाले इस भीषण व्यापार को रोकने के लिए साहस और दृढ़ता के साथ उद्योग होना चाहिए।"

- गणेश शंकर विद्यार्थी

अमर शहीदों का पैग़ाम, जारी रखना है संग्राम !

शिक्षा-रोज़गार की बात करो! जनअधिकार यात्रा के साथ चलो!!

भगतसिंह जनअधिकार यात्रा

बेरोज़गारी, महँगाई, भ्रष्टाचार, साम्प्रदायिकता और मेहनतकश जनता की लूट के ख़िलाफ़!
रोज़गार, शिक्षा, चिकित्सा, आवास और जुझारू जनएकजुटता के लिए!

प्रमुख माँगें :-

● रोज़गार के अधिकार को मूलभूत अधिकारों में शामिल किया जाये। 'भगतसिंह राष्ट्रीय रोज़गार गारण्टी क़ानून' को संसद में पारित किया जाये। सभी योग्य नागरिकों को 365 दिन काम की गारण्टी अथवा ₹10,000 प्रति माह बेरोज़गारी भत्ता दिया जाये। सभी रिक्त सरकारी पदों पर भर्ती की जाये।

● सभी श्रम क़ानूनों को सख़्ती से लागू किया जाये। नये प्रस्तावित 'लेबर कोड्स' को रद्द किया जाये।

● महँगाई पर नियन्त्रण के लिए जमाखोरी, भविष्य व्यापार (फ़्यूचर्स ट्रेड) व सट्टेबाज़ी पर रोक लगायी जाये। बुनियादी वस्तुओं व सेवाओं के वितरण की व्यवस्था का राष्ट्रीकरण किया जाये।

● शिक्षा के अधिकार को मूलभूत अधिकार के तौर पर संविधान में शामिल किया जाये। जनविरोधी 'नयी शिक्षा नीति 2020' को रद्द किया जाये।

● सच्चे सेक्युलर राज्य को सुनिश्चित करो, किसी भी सरकार, पार्टी व नेता द्वारा धर्म, समुदाय अथवा आस्था का सार्वजनिक जीवन में उल्लेख दण्डनीय अपराध घोषित किया जाये।

अन्धकार का युग बीतेगा! जो लड़ेगा वो जीतेगा!!

bsjayatra 9582712837

BHAGAT SINGH JAN ADHIKAR YATRA
BSJAY

• भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI)
• नौजवान भारत सभा • दिशा छात्र संगठन • बिगुल मज़दूर दस्ता